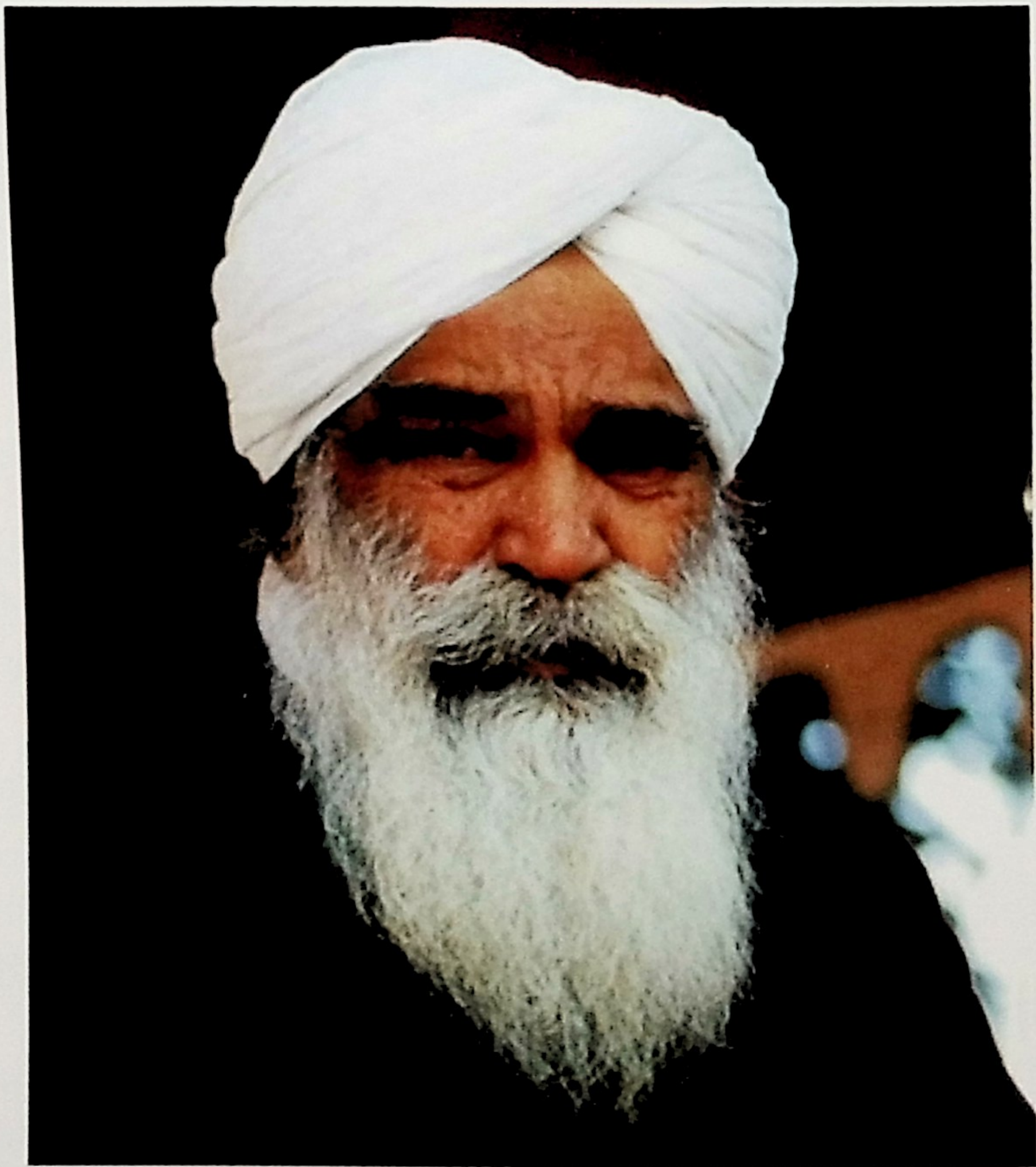
इंसान!
अपने आपको जान

कृपाल सिंह





परम संत कृपाल सिंह जी महाराज
(1894-1974)

इंसान!
अपने आपको जान

कृपाल सिंह

सावन कृपाल पब्लिकेशन्स
स्पिरिचुअल सोसायटी

‘इंसान! अपने आपको जान’

मूल अंग्रेज़ी पुस्तक :
'Man! Know Thyself'

तृतीय संस्करण : 2001
वर्तमान संस्करण : 2023

प्रकाशक : सावन कृपाल पब्लिकेशन्स स्पिरिचुअल सोसायटी
कृपाल आश्रम, संत कृपाल सिंह मार्ग, विजय नगर, दिल्ली-110009
संपर्क सूत्र : 011-27117100
E-mail : skpindia@sos.org
Website : www.sos.org
www.facebook.com/sos.global
www.facebook.com/santrajindersinghjimaharaj

मुद्रक : रेवंत ग्रुप, ई-28, लाजपत नगर, साहिबाबाद-201 005 (इंडिया)

भूमिका

जब से यह दुनिया बनी, इंसान तलाश में रहा, अपनी आत्मा को जानने की, जो कि उसका अपना आपा (निज–स्वरूप) है। आज भी उसकी यह तलाश जारी है, बल्कि आज, वह पहले से कहीं ज़्यादा, आत्म–विद्या को पाने की ज़रूरत महसूस करता है। सदियों की कोशिश के बाद इंसान कुदरत की ताक़तों पर काबू पाकर उनसे काम लेने में बहुत हद तक कामयाब हो चुका है। पर इससे पहले कि वह अपने आपको जान पाता कि वह कौन है, नतीजा यह है कि उसकी तमाम ईज़ादें, जो कि मनुष्य जाति की भलाई के लिए थीं, आज मौत और तबाही का साधन बन के रह गई हैं। इंसान दिल से अमन चाहता है, जबान से कहता भी है, दावा भी करता है, पर अमन कायम करने में वह बुरी तरह नाकाम (असफल) रहा है। अमन और शांति का आदर्श सामने रखते हुए भी, अज्ञानता के कारण वह कौमों–कौमों, समाजों–समाजों और मुल्कों–मुल्कों में वैर–विरोध और वैमनस्य के बीज बोता चला जाता है। इंसान में सही–नज़री (विवेक बुद्धि) नहीं रही, जिसके कारण दुनिया का अमन बालू की भीत (रेत की दीवार) बन के रह गया है, जो अब गिरी कि अब गिरी। अपने आस–पास हर तरफ़, सामाजिक अत्याचारों और आमदनी की असमानता से पैदा हुए भेद–भाव को देखकर ईश्वर पर से मनुष्य का विश्वास उठता जा रहा है बल्कि अपने साथी मनुष्यों पर भी उसे विश्वास नहीं रहा है। लंगर से टूटी बिन पतवार की नाव के समान वह संसार सागर की तूफ़ानी लहरों में बे–इख़्तियार बहे चला जा रहा है। हालत यह बन पड़ी है कि एटमबम और हाइड्रोजन बम के विनाशकारी यंत्रों से सारी दुनिया आज भयभीत हो रही है। विश्वशांति बन्दूक की संगीनों की नोक पर खड़ी है।

इंसानी कोशिश हार गई है। यह संतोषजनक परिस्थिति नहीं है जिसमें कि हम रह रहे हैं। तलवार के ज़ोर से स्थापित की गई शांति क़ब्र की, मौत की शांति है। हमें 'ज़िन्दा' शांति चाहिए, जो परस्पर प्रेम पर, विश्व बन्धुत्व पर आधारित हो, जहाँ एक प्रभु की संतान होने के नाते, सब इंसान भाई–भाई के समान आपस में प्रेम–प्यार से रहें, जहाँ एक दूसरे पर विश्वास हो, एक दूसरे के लिए आदर भाव हो।

सच्ची शांति को पाने के लिए, जो हमेशा बनी रहे, कभी भंग न हो, हमें अपने अन्तर को खोजना होगा, अपने आप को जानना होगा। इस वक़्त हम जिस्म का, जगत का रूप बने पड़े हैं– हम अपने जिस्म के साथ इतना लम्पट हो गए हैं कि अपने आपको, अपनी आत्मा को भूल गए हैं तथा अपने जीवनाधार परमात्मा को भूल गए हैं। हम आत्मा थे, इस जिस्म को चलाने वाले, देह–रूपी इस मकान के निवासी, लेकिन हम मकान बन के रह गए हैं। इस भ्रम से निकलने के लिए हमें पिंड (स्थूल देह) से ऊपर आकर आत्मानुभव को पाना होगा। इस अनुभव को पाने के लिए हमें किसी सत्स्वरूप महापुरुष की शरण में जाना होगा। उसे गुरु कह लो, संत कह लो, साधु कह लो–कोई नाम रख लो उसका, जो आत्म–विद्या का बौद्धिक ज्ञान ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत अनुभव भी दे सकता हो, जो समझा भी सके और दिखा भी सके।

इस उद्देश्य को सामने रखकर सत्गुरु दयाल, संत कृपाल सिंह जी महाराज ने, विदेशी श्रोताओं के लिए यह विचारणीय प्रवचन किया, जो 'Man! Know Thyself' के नाम से, पुस्तक रूप में अंग्रेज़ी भाषा में छपा और बाद में फ्रेंच, जर्मन, ग्रीक और अन्य भाषाओं में इसके अनुवाद भी छपे। अब इसका सरल हिंदी में अनुवाद करके हिंदी भाषा भाषी सज्जनों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। अनुवाद हुज़ूर महाराज की सहज–सुलभ, हिंदी–उर्दू मिश्रित भाषा में है और वर्णन शैली भी उनके सत्संग प्रवचनों की ली गई है।

– भद्रसेन



संत कृपाल सिंह जी महाराज

(1894-1974)

विद्यालय की औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद 17 वर्ष की आयु में आपने फैसला किया, "प्रभु पहले और संसार बाद में" और आध्यात्मिक परिपूर्णता के लिए तीव्र खोज शुरू कर दी। आप अनेक धर्म, मतों और विचार धाराओं के महापुरुषों और योगी जनों से मिले और उनके दावों को बारीकी से जाँचा, परखा। आपकी यह सच्ची खोज अंत में, सन् 1924 ई. में आपको ब्यास के महान संत, हुजूर बाबा सावनसिंह जी महाराज (1858-1948) के चरणों में ले गई। अगले चौबीस वर्षों तक आपने हुजूर के मार्गदर्शन में अपना आध्यात्मिक विकास किया और उनके मिशन में विभिन्न प्रकार के सेवा कार्य किए।

बाबा सावन सिंह जी ने आकाशवाणी की थी कि संसार में आध्यात्मिक जागृति होने वाली है और उन्हीं के आदेश पर, सन् 1948 में संत कृपालसिंह जी ने आध्यात्मिक कार्यभार संभाला और संतों के शाश्वत संदेश को एक संपूर्ण विज्ञान के रूप में पेश किया। आपने तीन विश्व दौरे किए (1955, 1963 एवं 1972), और अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं में, अध्यात्म के हरेक मुख्य विषय पर, अनेकों पुस्तकें प्रकाशित कीं। आपने अस्सी हज़ार चार सौ छियालीस जिज्ञासुओं को दीक्षित किया तथा लाखों लोगों ने गवाही दी कि उनका जीवन सुधर गया है।

संत कृपालसिंह जी ने 'वर्ल्ड कांउसिल ऑफ़ रिलिजन्स' (विश्व धर्म संघ) की स्थापना की और इसके पहले चार सम्मेलनों (1957, 1960, 1965 एवं 1970) की अध्यक्षता भी की। 1970 में आपने देहरादून में मानव केन्द्र की स्थापना की जिसके द्वारा आपने संदेश दिया कि हम एक सच्चे इंसान बनें और इंसान, ज़मीन एवं जानवरों की सेवा करे।

संत कृपालसिंह जी से पहले, संसार में भौतिकवाद छाया हुआ था, रूहानियत लोप हो चुकी थी और एक धर्म का नेता दूसरे धर्म के लोगों से बात करने को तैयार नहीं था। यह उनकी कोशिशों का फल है कि आज संसार में आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति पहले से बहुत अधिक जागरूकता है और आज विभिन्न धर्मों के अगुआ एक दूसरे से वार्ता करने के लिए तैयार रहते हैं।

संत कृपालसिंह जी का रूहानी मिशन, जो कि छब्बीस वर्ष चला, 21 अगस्त, 1974 को समाप्त हो गया। उनके कार्य को अगामी 15 वर्षों तक (1974 से 1989 तक) संत दर्शनसिंह जी ने आगे बढ़ाया। आज भी उनका मिशन संत राजिन्दर सिंह जी के नेतृत्व में फल–फूल रहा है।



चंद शब्द

लगभग चालीस वर्ष पहले की बात है, इन पंक्तियों का लेखक, यह तुच्छ सेवक हुजूर संत कृपालसिंह जी महाराज की लघु पुस्तिका 'Man! Know Thyself' के हिंदी अनुवाद "इंसान! अपने आपको जान" के प्रैस प्रूफ़ पढ़ रहा था। हृदय और मस्तिष्क के कपाट खोलने वाली उनकी हृदयग्राही वाणी की charging, उसका विद्युत गति प्रभाव, जिसने पूरी दुनिया को झँझोड़ कर रख दिया, लफ़्ज़–लफ़्ज़, दिल में उतरता जा रहा था। और आज 36-37 वर्ष बाद उनकी वही किताब, आश्रम के शांत स्थिर माहौल में (इस फ़र्क के साथ कि तब सावन आश्रम में थे और अब कृपाल आश्रम में) प्रेस–प्रूफ़ के रूप में हम पढ़ रहे हैं – बीच में साढ़े तीन दशकों का अन्तर है, जिसके साथ स्थिति और स्थान में भी भारी बदलाव आया है। मगर स्थिर क्षण में लिखा उनका हर शब्द ख़ास कर पूरी मानव जाति को उनका सशक्त आह्वान, "इंसान! अपने आपको जान!" वही का वही है, वहीं का वहीं है, सारे सवालों, सारी समस्याओं का मूल प्रश्न, जिसे हर इंसान को अपने तौर पर, अपने आप हल करना है। वह एक 'Man Problem' है, मेरी–तेरी, इसकी–उसकी समस्या है, मगर सबका सवाल और सबकी समस्या होते हुए भी, वह हरेक इंसान की निजी, व्यक्तिगत समस्या है, जो उसके अपने आपे से, मानव देह की निवासी, जीवन–प्राण आत्मा से जुड़ी हुई है। आत्मा को जानना, परमात्मा को जानने के रास्ते की पहली मंज़िल है, जैसा कि वेद में आया है :

> वह परमात्मा न इंद्रियों से जाना जाता है, न मन से, न बुद्धि से, न प्राणों से। केवल आत्मा ही उसे अनुभव कर सकती है।

इसीलिए अहले इस्लाम के क़ामिल फ़कीरों ने कहा कि ख़ुदशनासी (अपने आपका अर्थात आत्मा का ज्ञान), ख़ुदाशनासी (परमात्मा को पाने) की पहली मंज़िल है, यहाँ तक कहा कि ख़ुदशनासी ही ख़ुदाशनासी है। लगता है प्रूफ़ पढ़ते–पढ़ते "इत्तेफ़ाकन आ गया था नींद का झोंका मुझे।" आँख खुली तो देखा, दुनिया बदल गई है। हुज़ूर संत कृपालसिंह जी महाराज जागृति का आह्वान दे कर चले गए। उनके बाद संत दर्शन सिंह जी महाराज आए। वही आदि–अनंत, स्थिर क्षण, उनकी कविता का, उनकी दयाधारा का, उनके सार्वभौमिक प्रचार का अविरल स्त्रोत था, जो उनके दो आध्यात्मिक मार्गदर्शकों– परम संत श्री हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज और उनके तद्रूप हुज़ूरे–पुरनूर संत कृपाल सिंह जी महाराज का था। एक ही सार–शब्द, एक ही सार–वचन था, जो कभी क़तरा बना, कभी लहर, कभी दरिया, कभी समुन्दर। वही कहानी, क़तरे के रूप में समुन्दर की कहानी पीढ़ी–दर पीढ़ी दोहराई जाती रही और हम हैं कि, बकौल 'दर्शन':

मेरी पहनाइए-इल्मो-ख़बर की इन्तिहा ये है
कि इक कतरे से नावाफिक हूँ दरिया-आशना होकर

पहनाई मा'ने विस्तार, इल्मो–ख़बर (ज्ञान और मालूमात), क़तरा (बूंद), दरिया–आश्ना (जो दरिया की थाह पा चुका है)। कहते हैं, मेरे ज्ञान और मालूमात का चरमोत्कर्ष यह है कि दरिया की थाह पाकर भी एक क़तरे को, पानी की बूंद को मैं नहीं जान सका। संत दर्शन सिंह जी महाराज के कथनानुसार इंसान साइन्स के आविष्कारों के फलस्वरूप चाँद पर तो पहुँच गया, मगर अपने पड़ोसी के दिल तक नहीं पहुँच सका।

यह हमारी व्यक्तिगत tragedy (दुःख भरी कहानी) नहीं, इस पूरे युग की, समूची मानव जाति की कहानी है, जिसकी निशानदेही दर्शन के उपरोक्त शे'र में की गई है। इसी संदर्भ में हुज़ूरे–पुरनूर संत कृपाल सिंह जी महाराज ईरान के सूफ़ी–फ़कीरों के इस फ़ारसी शे'र का हवाला दिया करते थे :

कीमते कालः मीदानी के चीस्त
कीमते ख़ुदरा न दानी अब्लहीस्त

अर्थात, हे इंसान! तूने हर चीज़ का मूल्यांकन कर लिया, हरेक पदार्थ की क़ीमत के बारे में जान लिया, लेकिन अगर अपनी क़ीमत का तुझे ज्ञान नहीं, तो तू मूर्खों का मूर्ख है।

हुजूरे–पुरनूर संत कृपालसिंह की अमर रचना "इंसान! अपने आपको जान!" नए स्वर्णिम युग की ओर बढ़ते ज़माने के इंसान को एक सशक्त आह्वान है, उस परम ज्ञान को पाने का, जिसको पाकर सब पाया हुआ हो जाता है।

वही आह्वान, जो परमार्थ की तड़प और तलाश मन में पैदा करे, उनके बाद उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी, दयाल पुरुष संत दर्शन सिंह जी महाराज ने विज्ञान की प्रयोग–सिद्ध शैली में ही नहीं, सान्इस की पारिभाषिक शब्दावली में दिया, जिसमें काव्य की सरसता और लालित्य भी शामिल है, जो आज की आधुनिक यान्त्रिक सभ्यता को संत दर्शनसिंह जी महाराज की ख़ास देन थी।

और उनके बाद अब, संत राजिन्दर सिंह जी महाराज की सरबराही में, जो विश्व के जाने–माने वैज्ञानिक हैं, जन–कल्याण का यह प्रभु–प्रदत्त कार्य अबाध गति से आगे ही आगे बढ़ता–फैलता चला जा रहा है।

– हरिश्चंद्र चड्ढा
पूर्व संपादक, 'सत्–संदेश'



इंसान! अपने आपको जान

जब से यह दुनिया बनी और इंसान में पहले–पहल self-awakening अर्थात आत्म–जागृति आई, उसकी ज़्यादातर कोशिश और तवज्जोह इस सवाल को हल करने में लगी रही कि मैं कौन हूँ? इस दुनिया से मेरा क्या संबंध है? यह दुनिया कैसे बनी? इसको बनाने वाला कौन है? मुद्दतों वह खोज–कुरेद करता रहा, मगर यह सवाल, ज़िंदगी का यह मुअम्मा (भेद) हल न हुआ। उसकी जिज्ञासा और बढ़ी। अब उसने ग्रंथों–पोथियों को खोजना शुरू किया, यह जानने के लिए कि दूसरे लोग इस खोज में कहाँ तक पहुँचे और उन्हें क्या अनुभव हुआ?

पूर्ण पुरुष जो आज दिन तक आए, सबने इसी सवाल पर ज़ोर दिया कि वह क्या चीज़ है, जिसको जान लेने से सब कुछ जाना हुआ हो जाता है? और साथ ही जवाब भी दिया, "वह है आत्म–ज्ञान, मनुष्य का जो अपना आपा है, देह–रूपी मकान का जो निवासी है, इसको चलाने वाला जो है, उसको जानना।" तो सच्चा ज्ञान वह है, जो सिद्धांत रूप में भी और अनुभव के द्वारा भी, दोनों पहलुओं से इस सवाल को हल करे कि आत्मा क्या है और उसका परमात्मा से क्या संबंध है? यह एक कुदरती साइन्स या विज्ञान है, जो किसी hypothesis (काल्पनिक मान्यता) पर आधारित नहीं। वह न बदला है न बदलेगा।

पुरातन ऋषियों ने इसे 'परा–विद्या' (अदृश्य का ज्ञान) कहकर बयान किया और इसकी व्याख्या के लिए अलग–अलग मत और सम्प्रदाय बन गए। इसकी प्राप्ति की ख़ातिर अर्थात ज़मीन की तैयारी के लिए जो प्रारम्भिक साधन किए जाते थे, उन्हें 'अपरा–विद्या' का नाम दे दिया गया। इसके अंतर्गत आते हैं : नेक–पाक सदाचारी जीवन और अपने–अपने तरीक़े से किया गया प्रभु का ध्यान, जो कि आत्मोन्नति के लिए बहुत ज़रूरी चीज़ें हैं।

आगे चलकर इस विद्या के नये–नये नाम रखे गए। इस विद्या में पूर्ण, अनुभवी महापुरुष 'संत' कहलाये और उनकी तालीम का नाम 'मत' रखा गया और इस प्रकार 'संत–मत' का नामकरण हुआ। आजकल इस विद्या के लिए यही नाम ज़्यादा प्रचलित है। 'शब्द योग', 'सुरत–शब्द योग', 'सहज योग' आदि कई और नाम भी प्रचलित हैं, पर मतलब सबका एक है।

संस्कृत भाषा में 'संत' शब्द 'सत्' से निकला है। 'संत' शब्द का अर्थ है, सत्स्वरूप महात्मा, जो सत् का रूप हो गया, परमात्मा में अभेद हो गया। यह ऊँची से ऊँची डिग्री या उपाधि है परमार्थ की, और 'मत' का अर्थ है– किसी माहिर की राय या विचार, जो उसके व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित हो। अतः 'संत–मत' का आधार बने वे अनुभव, जो सत्स्वरूप महापुरुषों ने अपने आपको जानने और परमात्मा को पहचानने के रास्ते पर पाए; इस रास्ते में कौन–सी चीज़ें रुकावट बनीं, कौन–सी सहायक सिद्ध हुईं, यह सारा निज अनुभव का निचोड़, उन्होंने लोगों की हिदायत (मार्गदर्शन) के लिए पेश कर दिया। दूसरी साइन्सों की तरह यह भी एक बाक़ायदा साइन्स है, एक प्रयोगसिद्ध विज्ञान है जिसके अंग हैं गूढ़ अध्ययन, खोज, छान–बीन और निज अनुभव। यह निजानुभव या आत्मानुभव एक ऐसी चीज़ है, जो समर्थ सत्स्वरूप महापुरुष हर उस व्यक्ति को, जो उसकी शरण में आता है, दे सकता है। तो 'संत–मत' सत्स्वरूप महापुरुषों की दी हुई एक तालीम है, उनकी चलाई हुई एक पद्धति है, उनका बताया हुआ एक मार्ग है।

पूर्ण पुरुष नामों, उपाधियों और समाजों के बाहरी लेबलों (ठप्पों) पर नहीं जाते। चाहे कोई हिन्दू हो, मुसलमान हो, सिक्ख हो, ईसाई हो, राम हो, खान हो, जोसफ़ हो, वे उनमें कोई भेद नहीं करते। उनके लिए इंसान–इंसान सब एक हैं। वे इस बात को नहीं मानते कि रूहानियत (आत्म–विद्या) किसी ख़ास समाज या धर्म का इज़ारा (एकाधिकार) है, हालाँकि कई समाजों और पंथों ने अपने प्रवर्तकों के नामों से इस विद्या को जोड़कर इस पर अपना एकाधिकार जमा रखा है। संतों की नज़र में ये सारी समाजें अलग–अलग स्कूलों और कॉलिजों की तरह

हैं। जैसे स्कूलों और कॉलिजों की अलग-अलग वर्दियाँ और badges (बिल्ले) होते हैं, मगर तालीम एक है। ऐसे ही समाजों में अपने-अपने चिन्ह-चक्र हैं, पर आदर्श सबका एक है। इंसान का दर्जा सबसे ऊँचा है और इंसान-इंसान सब एक हैं, चाहे वे किसी देश, जाति, वर्ग या समाज से संबंध रखते हों, सब उस मालिक के बच्चे हैं, आपस में भाई-भाई हैं और इकट्ठे बैठकर इन (समाजों के) स्कूलों और कॉलिजों में तालीम पाते हैं। गुरु या संत-सत्गुरु, आत्म-विद्या का माहिर होता है, सिद्धांत रूप में भी और अनुभव करके भी। वह हर सच्चे मुतलाशी (जिज्ञासु) को, जो उसकी शरण में आए, चाहे वह किसी भी देश, जाति या समाज से संबंध रखता हो, आत्म-विद्या का बौद्धिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि उसका आंतरिक अनुभव भी दे सकता है। उसमें यह सामर्थ्य है। वहाँ अधिकारी-अनाधिकारी का भी कोई सवाल नहीं। मर्द, औरत, बच्चा, बूढ़ा, पापी, पुण्यवान, पढ़ा, अनपढ़ जो भी तड़प और लगन रखते हैं, आत्म-विद्या को पाने की, उनकी नज़र में वे सब अधिकारी हैं।

धर्मसमाजों की मौजूदा हालत

डिक्शनरी (शब्द-कोष) के अनुसार मत का अर्थ है, मति, बुद्धि। लेकिन आम बोलचाल (प्रचलित लोकभाषा) में इसका मतलब 'पंथ' या 'सम्प्रदाय' है अर्थात एक जैसे ख़्याल और विश्वास रखने वाले लोगों का दल या गिरोह। जो विश्वास और विचार ख़ाली पढ़े-पढ़ाये पर आधारित हों, उनकी पुष्टि के लिए अपना निजी, व्यक्तिगत अनुभव न हो, वे थोथे और निराधार हैं और जिज्ञासु ख़ाली ज़बानी जमा-ख़र्च से धोखा खा जाता है। आज धर्म-समाजों और संस्थाओं की क्या हालत है? पुरानी ग्रंथ-पोथियाँ हैं या वे मान्यतायें और सिद्धांत हैं, जो परम्परा से चले आ रहे हैं। ज़्यादातर यही कुछ रह गया है, समाजों के पास। इससे परमार्थाभिलाषियों की प्यास नहीं मिट सकती। अपनी कमज़ोरी को छिपाने के लिए उनके पास कथा-वार्ता और ज़बानी ज्ञान-ध्यान ही रह गया है। ग्रंथों-पोथियों के विस्तृत भंडार से चुने हुए दृष्टांत या पुराने

इतिहास रोचक ढंग से पेश कर दिए और बस। निजी अनुभव की जगह प्रचार और स्वांग–रचना ने ले ली है। Paid (पैसे लेकर किया गया) प्रचार ने हर जगह अधोगति फैला रखी है। हालत यह है कि धर्मग्रंथों पर लोगों की श्रद्धा मिटती जा रही है, बल्कि ईश्वर से भी विश्वास उठता जा रहा है। इसलिए दिनों–दिन नास्तिकता बढ़ती जाती है।

पूरी छान–बीन और खोज किए बिना किसी बात पर अंधाधुंध विश्वास कर लेना अकलमंद आदमी को शोभा नहीं देता। यह मूर्खता और अंधविश्वास की निशानी है। जो विश्वास अपने ज़ाती, अर्थात निज अनुभव पर आधारित नहीं, उसकी कोई क़ीमत नहीं। आज के युग का इंसान यह चाहता है कि परा–विद्या या आत्म–ज्ञान को एक बाक़ायदा साइन्स की तरह पेश किया जाए, जिसके तथ्यों को वह व्यक्तिगत अनुभव से सिद्ध कर सके और हर तजुरबे का कोई ठोस नतीजा निकले, जिसकी गवाही दी जा सके। तो ज़रूरत इस बात की है कि हम ख़ुद अपनी आँखों से देखें और अपने कानों से सुनें–दूसरों के देखे–सुने पर न चलें।

आत्म-विश्लेषण :

(अर्थात आत्मा को तन–मन से ऊपर लाकर उसके निज–स्वरूप को देखना)

इंसान जिस्म (शरीर) रखता है, मन (बुद्धि) रखता है और आत्मा रखता है। पहली दोनों चीज़ों के बारे में हम बहुत होशियार हैं। जिस्म करके और बुद्धि करके हमने बड़ी तरक़्क़ी की है। लेकिन तीसरी चीज़, अर्थात आत्मा के बारे में, जो हमारा अपना आपा है, जो शरीर और मन दोनों को चलाने वाली ताक़त है, उसके बारे में हम कुछ भी नहीं जानते। इंद्रियों के भोग–रस हमेशा रहने वाले नहीं, भोगते–भोगते वक़्त आता है कि यह जिस्म भोगने के क़ाबिल नहीं रहता। क्यों न हम आनंद और शांति का ऐसा सोमा (स्रोत) तलाश करें, जो कभी ख़त्म न हो और वह हमारे अपने अन्तर में है; आत्म–विश्लेषण या आत्मा को मन–इंद्रियों से अलहदा करके उसके निजस्वरूप का दर्शन करना, इस रास्ते में पहला क़दम है।

यहाँ आकर कई संशय मन में पैदा होते हैं। एक सिर ताक़त है, सब को चलाने वाली– उसे परमात्मा कह लो, ख़ुदा कह लो– बहुत लोग उसकी हस्ती (अस्तित्व) पर विश्वास रखते हैं, उसको पूजते हैं, उसकी चर्चा करते हैं। क्या हम उसके बारे में ज़्यादा जान सकते हैं? क्या हम उसे देख सकते हैं? क्या हम उससे बातें कर सकते हैं? इनमें से हरेक सवाल का स्पष्ट और निश्चित उत्तर है, लेकिन सबसे अधिक संतोषजनक उत्तर पूर्ण पुरुष से मिलता है। थोड़े लफ़्ज़ों में वह कहता है, "हाँ! हम उसकी हक़ीक़त को देख भी सकते हैं, उससे बातें भी कर सकते हैं, यदि हम उतने ही ऊँचे उठ जायें, जितना वह स्वयं है।" पूर्ण पुरुष यह नहीं कहते कि मर कर ही तुम उसे पा सकते हो। वे कहते हैं, "मौत का इंतज़ार करने की ज़रूरत नहीं। तुम इसी ज़िंदगी में उस हक़ीक़त का अनुभव कर सकते हो।" यह कोई अचरज की बात नहीं बल्कि कुदरत के नियमों के ऐन मुताबिक है, मगर हम उन नियमों के बारे में अभी कुछ नहीं जानते।

अपने आस–पास चारों तरफ़ हम देखते हैं कि एक छोटे से ज़र्रे (कण) से लेकर बृहद संसार तक, हर चीज़ कुदरत के किसी नियम या विधान के अनुसार चल रही है, उसके बिना कोई पत्ता तक नहीं हिलता। इसलिए एक प्रतिभाशाली विचारक को इस विश्व में और इसको चलाने वाले नियमों में कोई बेक़ायदगी, कोई अफ़रातफ़री (उथल–पुथल) और कोई अनिश्चित बात नज़र नहीं आती। किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुदरत का एक क़ानून होता है, एक असूल होता है, साथ में एक विधि होती है, जिससे हम अपनी कोशिशों के नतीजों की जाँच कर सकते हैं, उन्हें परख और तोल सकते हैं। यही बात रूहानियत के क्षेत्र में भी लागू होती है। अगर ध्यान से धर्मग्रंथों का अध्ययन किया जाए, तो सभी में ऐसे तरीकों का ज़िक्र आता है, हालाँकि ये तौर–तरीक़े अलग–अलग शब्दों और भाषाओं में दिए गए हैं।

हम ख़ुदा की बादशाहत में दाख़िल होना चाहते हैं। वहाँ कैसे पहुँचें? पूर्ण पुरुषों का साफ़ और सीधा जवाब है, "किसी ऐसे पुरुष की मदद और हिदायत ले लो, जो आप वहाँ गया है और तुम्हें वहाँ ले जा सकता

है।" सवाल पैदा होता है, क्या यह संभव है? वे फिर जवाब देते हैं, "यह ऐसा सही और सुनिश्चित ज्ञान है, जैसे दो और दो चार होते हैं।" धर्मग्रंथों को ख़ाली पढ़ छोड़ना या कथा–कीर्तन कर लेना काफ़ी नहीं। हमें भी वहाँ तक पहुँचने की कोशिश करनी चाहिए, जहाँ तक वे महापुरुष पहुँचे, जिन्होंने अपने अनुभव धर्मग्रंथों में लिखे हैं। उनका अनुभव हमारा अपना अनुभव बने, क्योंकि जो एक आदमी ने किया, वह काम दूसरा भी कर सकता है, अगर मुनासिब (उचित) मदद और हिदायत उसे मिले। यही हमारा आदर्श हो, इससे किसी कम बात पर हमें संतोष नहीं करना चाहिए।

एक और सवाल उठता है। हमारे मन में प्रभु प्रेम की सिर्फ़ एक दबी–दबी सी चिंगारी है। ऐसी हालत में क्या हमारे लिए कोई उम्मीद हो सकती है, उसको पाने की? पूर्ण पुरुष कहते हैं, "यह दबी हुई चिंगारी हमें प्रभु–ज्ञान का अधिकारी बनाने के लिए काफ़ी है।" यह वचन आशा की एक किरण है, क्या सचमुच प्रभु–प्रेम की यह छोटी–सी चिंगारी भड़क कर एक ज्वाला बन सकती है? काश ऐसा हो सके! हम फिर पूछते हैं, "नानक, कबीर, ईशु मसीह, मुहम्मद और दूसरे महापुरुष प्रभु–प्रेम से ओत–प्रोत थे, बड़े प्रेम से उन्होंने परमात्मा का गुणानुवाद गाया है। पर हम तो पापी हैं, तो शायद इस घोर कलयुग में हमारे लिए कोई आशा न हो।" महापुरुष हमें ढारस देते हैं, "तुम कितने ही पापी और गए–गुज़रे इंसान क्यों न हो, कोई फ़िक्र नहीं। जहाँ हो, वहीं खड़े हो जाओ, आगे से पाप करना बंद कर दो। आज इस ज़माने में भी सबके लिए, पापी से पापी के लिए भी, उम्मीद का दरवाज़ा खुला है।" बच्चा पीछे पैदा होता है, उसके लिए माता के स्तनों में दूध पहले आ जाता है। पहले जो बच्चे पैदा हुए, उनके लिए और जो बच्चे आज पैदा हो रहे हैं या आगे चलकर पैदा होंगे, सबके लिए एक ही क़ानून है। माँग और आपूर्ति का यह क़ुदरती नियम हमेशा से चला आ रहा है और हमेशा रहेगा। वह न बदला है, न बदलेगा। भूखे के लिए रोटी है, प्यासे के लिए पानी है।

कोई ज़िंदा सत्स्वरूप महापुरुष ही आपको अंतर्मुख करके, उस

परमात्मा का परिचय दे सकता है, उससे जोड़ सकता है। संत–मत में किसी ख़ास चीज़ या मूर्ति पर ध्यान टिकाना नहीं बताया जाता क्योंकि यह बात रूहानी तरक़्क़ी में बाधा डाल सकती है। महापुरुषों की तस्वीरें वगैरह सिर्फ़ यादगार के लिए हैं, हमें उनकी बाहरी पूजा आदि में नहीं लगना है।

संतों की तालीम– इंसान का बनना

परमात्मा का पाना मुश्किल नहीं, इंसान का बनना मुश्किल है। परा–विद्या के अनुसार, वह इंसान सही मा'नो में इंसान कहलाने का हक़दार नहीं हो सकता, जिसने अपने आपको नहीं खोजा और यह मालूम नहीं किया कि इस जिस्म की क्या क़ीमत है, मन की क्या क़ीमत है और आत्मा की क्या क़ीमत है, जो कि दोनों को आधार दे रही है। जिस इंसान ने अनुभव रूप में (जीते–जी) यह नहीं जाना कि परमात्मा से उसका क्या संबंध है, वह संतों की नज़र में इंसान कहलाने का अधिकारी नहीं। उसने इंसानियत (मानवता) का अभी क, ख, ग पढ़ना भी शुरू नहीं किया। इसलिए संतों ने हमेशा इस बात पर ज़ोर दिया है, कि इंसान सही मा'नो में इंसान बने। यह पहला क़दम है परमार्थ का।

सत्संग– बाहिरी और अन्तरी

जब कोई सत्स्वरूप महापुरुष (संत–सत्गुरु) परमार्थ के अनुभव सिद्ध तथ्यों को, एकत्रित संगत के सामने, प्रवचन द्वारा प्रस्तुत करता है, उसे हम बाहिरी सत्संग कह सकते हैं। यह सत्संग बुद्धि–विचार द्वारा एक बात को समझने के लिए है। बात समझ में आ गई तो फिर अंतर्मुख होकर, साधन–अभ्यास द्वारा कमाई करना– यह दूसरा पहलू है, इसे अंतरीय सत्संग कह लो। सच्चे दिल से किया गया अभ्यास दिनों और हफ़्तों में फल लाता है, उसके लिए बरसों इंतज़ार करने की ज़रूरत नहीं। सच्चा सत्गुरु पहले दिन ही सामने बिठाकर अन्तर का अनुभव दे देता है। रुपये में एक आना सही, अनुभव ज़रूर मिलता है वहाँ और हरेक को मिलता

है, आगे मेहनत करके उस अनुभव को चाहे जितना बढ़ा लो। सबके मन की ज़मीन (पृष्ठभूमि) एक जैसी नहीं होती, इसलिए कोई जल्दी तरक़्क़ी कर जाता है, कोई देर में।

दृढ़ता की कमी, लापरवाही या हालात के दबाव के कारण जब लोग करनी और कमाई को छोड़कर, ज़बानी जमा–ख़र्च में लग जाते हैं, जब समाजों के धर्माचार्य और विद्वान, बुद्धि–विचार और ज़बानी ज्ञान–ध्यान पर ज़ोर देने लग जाते हैं, तो परा–विद्या क्षीण होने लगती है और इंसान को कहीं चैन नहीं मिलता। वह जाए तो कहाँ जाए? जब कोई सत्स्वरूप महापुरुष चोला छोड़ता है, तो प्रायः ऐसी हालत पैदा हो जाती है, लेकिन कुदरत की तरफ़ से पूरा प्रबन्ध है, इस विद्या को ताज़ा करने का। हर ज़माने में महापुरुष आते रहे और आगे भी आते रहेंगे। दो तरह के महापुरुष दुनिया में आते हैं : एक 'Negative Power' अर्थात काल सत्ता के प्रतिनिधि, उन्हें अवतार कह लो, दूसरे 'Positive Power' अर्थात दयाल सत्ता के प्रतिनिधि या संत। दोनों उस मालिक से ताक़त लेते हैं, लेकिन काम अपना–अपना है। अवतारों का काम है, जब दुनिया के हालात बिगड़ जायें और धर्म की ग्लानि हो रही हो, तो आकर स्थिति को ठीक करना, धर्मियों को उभारना, पापियों को दंड देना और व्यवस्था को ठीक करना। संत मालिक से बिछुड़ी हुई रूहों को, जो निज घर जाने के लिए तड़प रही होती हैं, मालिक से जोड़ने के लिए दुनिया में आते हैं। वे हमारी तरह जिस्म रखते हैं, आम इंसानों में और उनमें ज़ाहिरा कोई फ़र्क दिखाई नहीं देता। वे इंसान ही होते हैं हमारी तरह, इसमें शक नहीं, लेकिन वे कुछ और भी होते हैं। जैसे किसी आदमी की ख़ाली शक़्ल देखकर हम यह अंदाज़ा नहीं लगा सकते कि वह न्यायाधीश (जज) है, साइन्सदान (वैज्ञानिक) है, डॉक्टर है या इंजीनियर है, जब तक कि वह अपना हुनर न दिखाये। इसी तरह, जब तक संतों में काम करती उस रब्बी ताक़त (प्रभु–सत्ता) को हम अपने अन्तर में अनुभव नहीं करते, हम नहीं जान सकते कि वे किस शान और सामर्थ्य के मालिक हैं।

इस विद्या में कोई गुप्त भेद वाली बात नहीं। यह मनुष्य मात्र के

कल्याण के लिए है, सब इंसानों के फ़ायदे के लिए है, इसलिए संतों ने इस पर पड़े हुए सारे रहस्य के परदे उठा दिए हैं, ताकि हर कोई इससे फ़ायदा उठा सके। संतों के अन्दर उस मालिक की अदृश्य सत्ता काम करती है। वह प्रभु–सत्ता क्यों हमारी आँखों से ओझल रहती है, यह सवाल हमें किसी इंसानी pole (इंसानी प्रकाश स्तंभ) अर्थात संत–सत्गुरु से पूछना चाहिए, जिसके द्वारा वह ताक़त काम करती है। बिजली से काम लेने के लिए हमें उस स्विच या pole (बिजली के खम्भे) के पास जाना होगा, जो Power-house (बिजली के स्रोत) से जुड़ा हो। उस अदृश्य प्रभु–सत्ता को 'प्रेम का समुन्दर' कह लो। समुन्दर में स्नान करना हो तो हम किनारे (घाट) पर जाते हैं, जहाँ पानी कम गहरा होता है। वहाँ स्नान करने के बाद हम कह सकते हैं कि हमने समुन्दर में स्नान किया है। इसी तरह, उस प्रभु–सत्ता का अनुभव पाने के लिए और परमार्थ का पूरा लाभ उठाने के लिए हमें किसी सत्स्वरूप महापुरुष अर्थात संत–सत्गुरु की शरण में जाना होगा। उसके सिवाय, और कोई ज़रिया नहीं है परमात्मा से मिलने का।

मौत से परे की ज़िंदगी

संत कहते हैं कि कुदरत ने इंसान को ऐसा बनाया है कि वह जब चाहे, पिंड से ऊपर आकर रूहानी मंडलों में सफ़र करे और जब चाहे, वापस स्थूल शरीर में आ जाए। वे (संत) हर एक परमार्थाभिलाषी की व्यक्तिगत रूप से मदद करते हैं और उसे दीक्षा के समय, पहले दिन ही, कुछ न कुछ अंतरीय अनुभव ज़रूर देते हैं। महात्मा, संत या सत्गुरु सही मा'नो में उसे कहते हैं, जो किसी शिष्य को जीते–जी पिंड से ऊपर आने का ज़ाती (व्यक्तिगत) अनुभव दे सके, जो उसकी आत्मा को पिंड से ऊपर लाकर रूहानी मंडलों में सफ़र कराने की सामर्थ्य रखता हो। विभिन्न धर्म–समाजों के जो heads (धर्मगुरु, आचार्य) हैं, उनका असली काम यही था, पर आजकल उनकी काबिलियत कैसी है, आप ख़ुद फ़ैसला कर लें।

सत्स्वरूप महात्मा की दयामेहर से जो अनुभव मिलता है, जीते–जी पिंड से ऊपर आने का, वही मौत की समस्या का हल है। जीते–जी पिंड से ऊपर आ गए, तो मौत का भय कहाँ रहा? बाइबिल में आता है, "जब तक तुम दुबारा जन्म नहीं लेते, तुम परमात्मा की बादशाहत में दाख़िल नहीं हो सकते।" नया जन्म लेना या द्विजन्मा बनना क्या है? पिंड से ऊपर आकर नई दुनिया में जाग उठना, स्थूल दुनिया से ऊपर उठकर सूक्ष्म में प्रवेश करना। यह जिस्म क्षणभंगुर है, एक दिन हमें इसे छोड़ जाना है। यह किराये का मकान है, ईंट–पत्थर–चूने के बने मकानों की तरह यह भी दिनों–दिन क्षीण होता जाता है। दुनिया की अदालतों में मौत की सज़ा के ख़िलाफ़ अपील हो सकती है, मगर धुरधाम से जो परवाना जारी होता है, वहाँ कोई अपील नहीं सुनी जाती। मौत हमारे लिए एक हव्वा बनी पड़ी है क्योंकि हमने जीते–जी मरना अर्थात पिंड से निकलना नहीं सीखा। दूसरे यह, कि मर के कहाँ जाना है, इसकी कोई ख़बर नहीं। बीमारी से हम इसलिए डरते हैं क्योंकि वह हमें मौत के दरवाज़े के क़रीब ले जाती है। हम जानते हैं कि एक दिन हमें मरना है, यह तय है, फिर भी हम ज़िंदा रहने की कशमकश में लगे रहते हैं। जब अंत समय आता है, रूह पिंड को छोड़ने लगती है, तब दोस्त, मित्र, रिश्तेदार, डॉक्टर, हक़ीम, भाई, मुल्ला, पंडित, पादरी सब खड़े के खड़े रह जाते हैं, कोई मदद नहीं कर सकता। हम छटपटाते हुए मर जाते हैं, घरवाले देखते रह जाते हैं। हाँ, जिन्होंने मौत का मुअम्मा (पहेली) हल कर लिया, जो जीते–जी पिंड से ऊपर आने के भेद को जान गए, उनके लिए मरना कोई मुश्किल नहीं। जो आया है वह एक दिन जाएगा, यह कुदरत का क़ानून है। हम कुदरत को धोखा नहीं दे सकते।

अब इसका इलाज क्या है? एक ही रास्ता है इस मुसीबत से बचने का कि मरते वक़्त जिन मरहलों से गुज़रना पड़ता है, जीते–जी हम उन्हें तय कर लें, किसी समर्थ सत्स्वरूप महापुरुष की दयामेहर से हम बाहोश (होश–हवास रखते हुए), सहज में अपनी सुरत को पिंड से ऊपर लाना सीख जायें, ताकि अंत समय हम अपने आप को कुदरत के और सत्गुरु

के हवाले कर दें, "चलो भई, जहाँ जाना है, हम तैयार हैं।" यह संभव ही नहीं, बल्कि सौ फ़ीसदी हक़ीक़त है। अगर हम इस भेद को जान जायें, जिसको पाने के लिए इंसान सदियों कोशिश कर–कर के हार गया है, तो हमें कितनी ख़ुशी होगी! 'शांति' की, 'दिव्य मंडलों' की उस कुंजी को, जिसे इंसान सदियों खोजता रहा और नाकाम रहा, उस कुंजी को पाकर हमारी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहता। अब तक ग्रंथों–पोथियों में जिसका ज़िक्र ही सुनते आए थे, उस 'कुंजी' को पाकर हम आम इंसानों की सतह (स्तर) से बहुत ऊपर उठ जाते हैं, हम रूहानी पुरुष बन जाते हैं। इसलिए उठो, जागो और कमाई करो इस विद्या की, किसी सत्स्वरूप महापुरुष से रास्ता लेकर। यह समय जो मिला है, अगर हाथ से निकल गया, तो फिर या नसीब कब यह समय फिर मिले!

आपने मरते आदमी देखे होंगे। रूह पिंड को छोड़ती है, नीचे के चक्र टूटते हैं, सारी चेतन–सत्ता निकल कर आँखों में आ जाती है, आँखों की पुतलियाँ थोड़ा ऊपर को उलट जाती हैं और इंसान बेहोश हो जाता है (बाद में चाहे पुतलियाँ अपनी हालत पर वापस आ जायें)। जब वे (पुतलियाँ) ज़्यादा ऊपर को उलटें, तो इंसान मर जाता है, आँखों की जड़ से (पीछे से) जान निकल जाती है, पिंड (देह) से और इंद्रियों से उसका रिश्ता टूट जाता है। अगर हम जीते–जी इस रास्ते को ढूँढ लें और इस पर सफ़र करना अर्थात पिंड को छोड़ना सीख जायें, तो मौत की समस्या हल हो गई कि नहीं? इसके लिए किसी gymnastics (कसरत) की या कोई दवाई खाने की ज़रूरत नहीं, न ही अंधविश्वास का कोई काम है यहाँ। सत्स्वरूप महापुरुष की दयामेहर से तुम सहज में पिंड से ऊपर आ जाते हो। वह अपनी तवज्जोह का थोड़ा उभार देकर तुम्हारी सुरत को, पिंड से इस तरह निकाल लेता है, जैसे मक्खन में से बाल। पिंड से ऊपर आकर तुम रूहानी मंडलों में सफ़र करने के काबिल हो जाते हो। उसकी आज्ञा से उसका कोई प्रतिनिधि भी यह काम करे तो भी ज़िम्मेदारी उसकी (सत्स्वरूप महापुरुष की) है, उसकी सत्ता ही काम करती है। उसके लिए दूरी–नज़दीकी का कोई सवाल नहीं है। जैसा

कि कबीर साहब फ़रमाते हैं कि शिष्य सात समुन्दर पार रहता हो, गुरु इस तरफ़ रहता हो, तो भी पल भर में, *'दीनी सुरत पठाय'*।

इस मार्ग का क्या फ़ायदा है, यह कहने–सुनने में नहीं आ सकता। पूर्ण पुरुष के पास जाने से पहले हम अंधे और बहरे होते हैं, हमारी अन्तर की आँख पर अंधकार का परदा पड़ा होता है; अन्तर में उस प्रभु की 'ज्योति' है, पर हम उसे देख नहीं सकते; अन्तर में 'ध्वनि' हो रही है, पर हम उसे सुन नहीं सकते। पूरा गुरु, दीक्षा देते समय सामने बिठाकर हमारी अन्तर की आँख को खोलता है और हम उस ज्योतिस्वरूप परमात्मा की ज्योति को देखने वाले हो जाते हैं। तब हमें समझ आती है कि मंदिरों, मस्ज़िदों, गिरजों और दूसरे धर्मस्थानों में ज्योति जलाने का जो रिवाज़ चला आता है, यह बाहरी निशानी रखी गई है, उस अंतरीय ज्योति की याद दिलाने के लिए, जो घट–घट में प्रकाशमान है। हमें इस बात की समझ आ जाती है कि अन्तर में जो अनंत ध्वनि हम सुनते हैं, वह रब्बी रिश्ता, 'Divine Link' या दिव्य–सूत्र है, जिसे ईशु मसीह ने 'Word' कहा, कुरान ने 'निदाए–आसमानी' (आकाश–वाणी) और 'कलमा' कहा, वेदों ने 'नाद', उपनिषदों ने 'उद्गीत', जरदुश्त धर्म वालों (पारसियों) ने 'सरओशा' और संतों ने 'नाम' और 'शब्द' कहा।

गुरु जब नाम देता है, तो शिष्य के साथ हो बैठता है और हर वक़्त, हर जगह, वह उसकी संभाल (रक्षा) करता है। शिष्य गुरु की आज्ञा के अनुसार साधन अभ्यास करे तो दिनों–दिन तरक़्क़ी करता है, अन्तर में गुरु के दिव्य–स्वरूप को सामने देखता है, उससे बातें भी करता है। गुरु–सत्ता को वह प्रत्यक्ष देखता है, संभाल करते हुए। इस प्रत्यक्ष प्रमाण को पाकर उसे आत्म–विद्या की साइंस पर पूरा यक़ीन हो जाता है। तब जाकर वह सच्चे मा'नो में आस्तिक कहलाने का अधिकारी बनता है। उसे हँसी आती है उन लोगों पर, जो रूहानियत या आत्म–ज्ञान की बातचीत को बेवकूफ़ों की जन्नत तथा पंडितों, पुजारियों का ढकोसला और मन–घड़न्त बात समझते हैं। वह जीते–जी स्वर्गों का दरवाज़ा तलाश कर लेता है, जिससे निकल कर वह ऊपर रूहानी मंडलों में

सफ़र करता है और उस रमी हुई, घट–घट व्यापी प्रभु–सत्ता को अपने अन्दर भी और बाहर भी काम करता देखता है। कुदरत का कोई भेद उससे छिपा नहीं रहता। वह दिव्य मंडलों के उस प्रवेश द्वार को खटखटाता है, जिसके बारे में ईशु मसीह ने कहा, "दरवाज़ा खटखटाओ और वह तुम पर खोला जाएगा।" कोई कुछ भी कहे, आत्म–विद्या पर से और अपने मार्गदर्शक गुरु पर से उसका विश्वास नहीं डोल सकता। मौत उसके लिए एक अख़्तियारी (अपने वश की) चीज़ है। भूत, भविष्य, वर्तमान उसके लिए एक हैं। एक ऐसा सत्य उसके हाथ आ गया, जो सब ज्ञान–ध्यान का सार है और जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। वह शरीर के बंधन से आज़ाद है। शरीर उसके लिए एक खोल है, जब चाहे उतार दे, जब चाहे फिर पहन ले। वह अनुभव करता है कि मैं महाचेतन प्रभु की अंश हूँ और वह अपने अंशी (परमात्मा) से मिलने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। संसार उसके लिए सपने के समान होता है, लेकिन गुरु आज्ञा का पालन करते हुए वह संसार में रहते हुए, विवेक दृष्टि से, निर्भय होकर अपना कर्तव्य पूरा करता जाता है।

परमार्थी जिज्ञासु के लिए प्राथमिक शर्तें

जैसे संसार के इल्म सीखने के लिए कुछ प्राथमिक शर्तें पूरी करनी होती हैं, ऐसे ही आत्मज्ञान में तरक़्क़ी के लिए भी कुछ प्रारम्भिक शर्तें पूरी करनी आवश्यक हैं। गृहस्थ जीवन, कड़ी मेहनत की ज़िंदगी या ग़रीबी, नामदान या दीक्षा में बाधक नहीं, न नामदान के लिए यह बात कोई मा'ने रखती है कि आप किसी ख़ास समाज से संबंध रखते हैं। जहाँ, जिस समाज में तुम हो, वहीं रहते हुए नेकपाक सदाचारी, संयम का जीवन बनाओ। मन, वचन, कर्म से पवित्रता धारण करो, यह ज़रूरी है। "मुबारक हैं वे लोग जिनके हृदय पवित्र हैं, केवल ऐसे लोग ही परमात्मा को देख सकेंगे।" नेक पाक, सदाचारी जीवन रूहानियत (आत्म–ज्ञान) के शिखर पर पहुँचने की सीढ़ी है, परन्तु केवल नेक–पाक जीवन रूहानियत नहीं है, यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए।

इंसान की ज़िंदगी के दो पहलू हैं : 1. आहार तथा 2. व्यवहार अर्थात दूसरों से उसका बर्ताव। आहार में माँस, शराब और नशीली चीज़ों के सेवन की कड़ी मनाही है। "किसी को जान से न मारो" और "आप जीओ और दूसरों को जीने दो," हमारी ज़िंदगी के ये दो असूल होने चाहिएँ। यह जो शरीर हम लिए फिरते हैं, यह हरि–मंदिर है, यह सबसे बड़ा तीर्थ है। हमें चाहिए कि हम इसे साफ़–सुथरा रखें, इसे मैला न करें। शरीर की हम पूरी–पूरी संभाल करें। आहार में नशे वाली चीज़ों का सेवन भी मना है, क्योंकि ये चीज़ें चेतनता का नाश करने वाली हैं। घर–बार और बाहर दुनिया में, हमें सबसे प्रेम–प्यार से रहना चाहिए, प्यार दोगे तो प्यार ही मिलेगा। प्रेम और नम्रता– ये दोनों चीज़ें बहुत ज़रूरी हैं। दूसरों से वैसा ही बर्ताव करो, जैसा बर्ताव तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें। "प्रेम करो और सारे वरदान तुम्हें प्राप्त होंगे, अपने दुश्मन से भी प्यार करो।" परमात्मा से प्यार करने का मतलब है, सारी मानव–जाति से प्यार करना। परमात्मा कण–कण में बसा हुआ है और जो कोई भी उससे प्रेम करता है, उसे उसकी सृष्टि से भी प्रेम करना होगा। हम ख़ून–पसीने की कमाई पर गुज़ारा करें और दूसरों के साथ बाँट कर खाएँ। यह मात्र उपदेश नहीं, बहुत सोच समझ कर दी हुई सलाह है।

कर्मों का विधान

हरेक विचार जो मन में उठता है, हरेक कर्म जो हम करते हैं और हरेक वचन जो हम बोलते हैं, उसका हिसाब हमें चुकाना पड़ेगा। हर कर्म का असर है, हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। अगर आप नेहकर्म हो जाओ, अगर आप कर्ता न रहो, तो आपको कोई फल नहीं भुगतना होगा– यह कर्मों का विधान है। पूर्ण पुरुष कर्मों के विधान से ऊपर उठ चुके होते हैं, वे कर्मों के बंधन से आज़ाद होते हैं। उनके अतिरिक्त और सब लोग कर्म बंधन में होते हैं। कर्म–विधान कुदरत ने इसलिए बनाया है ताकि कोई निकलने न पाए और दुनिया की रौनक़ बनी रहे। कर्म–विधान में "आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत (किसी की आँख फोड़ोगे

तो तुम्हारी आँख फोड़ दी जाएगी, किसी का दाँत तोड़ोगे तो तुम्हारा दाँत भी तोड़ दिया जाएगा)," अर्थात "जैसा करोगे वैसा भरोगे" का क़ानून चलता है। प्रकृति के अदृश्य हाथों में यह (कर्म–विधान) एक चाबुक के समान है। मन, कर्मों के द्वारा आत्मा पर परदा डाल देता है और कर्म–इंद्रियों तथा ज्ञान–इंद्रियों द्वारा शरीर पर शासन करता है। मन, सत्ता आत्मा से लेता है लेकिन उसी पर सवार है। *"मन जीते जग जीत,"* दुनिया को जीतने से पहले हमें मन को जीतना होगा। कर्मों की गति न्यारी है। बड़े–बड़े ऋषि–मुनि–योगी–योगीश्वर भी कर्म के बंधन से आज़ाद नहीं हो सके।

संतों ने तीन प्रकार के कर्म बताये हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. संचित कर्म– अर्थात अच्छे या बुरे कर्म, जो जन्म–जन्मांतर से, सृष्टि के शुरूआत से हम करते चले आए हैं और जिनका भुगतान अभी बाक़ी है। अफ़सोस, मनुष्य संचित कर्मों के भंडार के बारे में कुछ भी नहीं जानता।

2. प्रारब्ध कर्म– अर्थात वे कर्म, जिनके फलस्वरूप यह वर्तमान जन्म, यह मानव देह हमें मिली है। ये कर्म इसी जन्म में हमें काटने हैं। प्रारब्ध पर हमारा कोई ज़ोर नहीं चलता, इन कर्मों का फल अचानक हमारे सामने आता रहता है और हमें भोगना पड़ता है, रोकर काट लें या हँसकर, प्रारब्ध भोगनी ही पड़ती है।

3. क्रियमान कर्म– अर्थात इस जन्म में किए गए अच्छे और बुरे कर्मों का ख़ाता। ये कर्म, पहले दो किस्म के कर्मों से भिन्न हैं क्योंकि यहाँ एक ख़ास हद तक इंसान को पूरी आज़ादी है, वह जो चाहे करे। संचित और प्रारब्ध कर्मों के बारे में इंसान को आज़ादी हासिल नहीं। क्रियमान कर्म, चाहे जानबूझ के किए गए हों या अनजाने में, अवश्य फलीभूत होंगे। इनमें कुछ ऐसे कर्म होते हैं, जिनका फल इसी जन्म में (मरने से पहले) मिल जाता है, जो बचे रहते हैं वे संचित कर्मों के ख़ाते में जमा हो जाते हैं।

कर्मों के कारण ही हम बार–बार जन्म लेते हैं और बार–बार मरते हैं और इस प्रकार सुख–दु:ख, जन्म–मरण का चक्कर चलता रहता है। "जैसा तुम सोचोगे, वैसे ही तुम बन जाओगे," यह सीधा–सा कानून है कुदरत का, जिस पर यह दुनिया खड़ी है। कोई कितना भी सदाचारी और सियाना क्यों न हो, जब तक कर्मों का ज़रा भी लेश बाक़ी है, तब तक वह कर्मों के बंधन से नहीं छूट सकता। वहाँ यह बहाना नहीं चलता कि हमें क़ानून की ख़बर नहीं थी। इंसान के बनाये हुए क़ानून में तो कुछ ख़ास हालातों में कोई रियायत या छूट हो सकती है, मगर कुदरत के क़ानून में कोई लिहाज़ नहीं। प्रार्थना या अपनी ग़लती को मानकर प्रायश्चित करने से मन को थोड़ी शांति ज़रूर मिलती है, लेकिन इस प्रकार हम कर्मों को टाल नहीं सकते। कर्मों का नाश हुए बिना अर्थात पूर्णतया निष्कर्म हुए बिना, मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

दुनिया की यह हालत देखकर इंसान ग्रंथों–पोथियों को खोजता है और बुद्धि–विचार द्वारा इस समस्या को हल करने की कोशिश करता है। जब उसे यह पता चलता है कि नेक कर्म और बुरे कर्म, दोनों जीव को बाँधने के लिए एक समान हैं, जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी (बाँधती दोनों ही हैं), तो फिर वह त्याग की ओर मुड़ता है। मज़हब वाले (विभिन्न धर्म समाजें और मत–मतांतर) कहते हैं, हमारे पास आओ, शांति का मार्ग हमारे पास है। वह जाकर देखता है कि समाजों के बाहरमुखी साधनों से कुछ देर के लिए जो थोड़ा–सा टिकाव मिलता है, वह स्थायी नहीं। तो अनुभवी महात्मा इस समस्या को कैसे हल करता है? दीक्षा देते समय वह शिष्य के सारे कर्मों का बही ख़ाता अपने हाथ में ले लेता है। शिष्य को अब धर्मराज को हिसाब देने की ज़रूरत नहीं। उसका लेखा–जोखा गुरु के पास रहता है। सबसे पहले वह संचित कर्मों के बहीखाते का हिसाब करता है। जैसे दाने भट्टी में भून लिए जायें, तो वे दुबारा उगने के काबिल नहीं रहते, इसी तरह नाम की कमाई से, जिसका परिचय शिष्य को गुरु पहले दिन ही दे देता है, संचित कर्म भस्म हो जाते हैं, वे फलीभूत नहीं होते। इसके बाद वह क्रियमान कर्मों को लेता

है। वह शिष्य से कहता है कि अब तक जो किया सो किया, अब आगे नये बीज न बोओ, जहाँ हो, वहीं खड़े हो जाओ। दीक्षा लेने से पहले किए हुए गुनाहों को, जिनमें से बहुत से वह (शिष्य) भुगत चुका होता है, वह (गुरु) अपनी दयामेहर से बख़्श देता है या उनका प्रभाव कम कर देता है। रहे प्रारब्ध कर्म, तो उनको पूर्ण पुरुष नहीं छेड़ते क्योंकि प्रारब्ध करके ही हम इस शरीर में रह रहे हैं। प्रारब्ध कर्मों को छेड़ा जाए, तो यह शरीर भी न रहे। अब शिष्य के लिए इस जन्म में भुगतने के लिए बहुत थोड़े कर्म बाक़ी रह जाते हैं और पूरे गुरु की दयामेहर से उनका भी ज़ोर कम पड़ जाता है। दुःख में, चिंता और परेशानी में, गुरु ही हमारा सहाई है। वह हर वक़्त शिष्य के अंग–संग है। दरियाओं में, जंगलों में, बियाबानों में, पहाड़ों की चोटियों पर, हर जगह वह शिष्य के साथ है और उसकी संभाल करता है। प्रारब्ध के अनुसार सुख–दुःख आते ही हैं, पर गुरु के नामलेवा के लिए वे इतने दुःखदायी नहीं होते। जैसे माता बच्चे को चीरा दिलवाते समय उसे गोद में उठाये रखती है, बच्चे को पता भी नहीं लगता, इसी तरह गुरु की गोद में बैठा हुआ शिष्य दुःख की चुभन को महसूस नहीं करता। अपनी दयामेहर से कई बार वे शिष्य के कष्ट का भार अपने ऊपर ले लेते हैं। जिस शिष्य के हृदय में गुरु का प्यार है, उसे धर्मराज की कचहरी में नहीं जाना पड़ेगा, उसके लिए गुरु ही सब कुछ है।

संत–सत्गुरु यह सारी ज़िम्मेदारी अपने सिर पर क्यों लेता है? परमात्मा दया का समुन्दर है। सत्गुरु उसका स्वरूप है, वह भी दयामेहर का भंडार है और परमात्मा का भेजा हुआ वह दुनिया में आता है, बख़्शिश (दयामेहर) का ख़ज़ाना लुटाने के लिए। इसीलिए उसकी वही महिमा है, जो प्रभु की है। संत–मत में सत्गुरु की महिमा बख़ान करने के लिए ग्रंथों के ग्रंथ लिखे जा चुके हैं, अभी जाने कितने और लिखे जायेंगे, फिर भी उनकी महिमा का, उनकी अपार दयामेहर का, उस दात का, जो वे दुनिया को बख़्शते हैं, वर्णन नहीं किया जा सकता।

इंसान का जीवन काल–गति के अधीन है। उसे वक़्त के साथ–साथ चलने के लिए कड़ी मेहनत और मुशक्कत करनी पड़ती है। अपनी बाहरी

ज़रूरतों और इच्छाओं में वह इतना महव (लीन) हो गया है कि वह संतोष, सहानुभूति और प्रेम की बात को बिल्कुल भूल चुका है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे जानी दुश्मनों के शिकंजे में जकड़ा हुआ वह क़दम–क़दम पर ठोकरें खाता है। उसकी दर्द भरी पुकार कुल–मालिक तक पहुँचती है। उस दया के सागर में हिलोर उठती है। वह कुल मालिक की ताक़त संत–सत्गुरु के चोले में इज़हार करती (प्रकट होती) है, जीवों के कल्याण के लिए। जैसे–जैसे अंधकार बढ़ता जाता है, उतनी ही अधिक मात्रा में दयामेहर लेकर संत–महात्मा दुनिया में आते रहते हैं। आज, इस घोर कलयुग के ज़माने में भी, वह ताक़त वैसे ही काम कर रही है।

इस बात पर यक़ीन करना मुश्किल है कि ऊपर लिखे पाँच विकारों (काम–क्रोध आदि) से इंसान ऊपर उठ सकता है और जीते–जी ख़ुदा की बादशाहत में दाख़िल हो सकता है। इन पाँच डाकुओं ने सारी मनुष्य जाति को वश में कर रखा है। कोई पूरा गुरु ही इंसान को इनके पंजे से छुड़ाये, तो छुड़ाये, वरना इंसान इनके जाल से निकल नहीं सकता। शरणागत होने से पहले हम (सभी) कोई ठोस सबूत चाहते हैं, जो पूरा गुरु ही दे सकता है। वह ज़िंदगी का दान हमें देता है अर्थात अपनी तवज्जोह (दया–दृष्टि) के उभार से हमारी सुरत (आत्मा) को पिंड से ऊपर लाकर अंतरीय 'नाम' या 'शब्द' (घट–घट रमी हुई करन–कारण प्रभु–सत्ता, जिसे वेदों ने 'नाद', उपनिषदों ने 'उद्गीत', कुरान ने 'कलमा', बाइबिल ने 'Word' और संतों ने 'नाम' या 'शब्द' करके बयान किया है) से जोड़ देता है, हमारी अन्तर की आँख खोल देता है, जिससे हम उस ज्योतिस्वरूप प्रभु की ज्योति को देखने वाले बन जाते हैं। यह अनमोल दात (व्यक्तिगत अनुभव की) किसी अनुभवी गुरु से ही मिल सकती है। इसलिए गुरु की बड़ी भारी ज़रूरत है। जो लोग ज़िंदा सत्स्वरूप महापुरुष की शरण में न जाकर केवल अपनी हिम्मत और कोशिश से हक़ीक़त को पाना चाहते हैं या प्राचीन परम्परा का पालन करने को ही सब कुछ समझते है और धर्मस्थानों के पुजारियों और

पुराहितों के कहे पर विश्वास करके बैठ जाते हैं (जो कि उन्हीं की तरह हक़ीक़त से दूर हैं), वे घट–घट में रमी हुई प्रभु–सत्ता के व्यक्तिगत अनुभव से ख़ाली रह जाते हैं। कहावत मशहूर है कि अंधा अंधे को रास्ता दिखाये तो दोनों ही गड्ढे में गिरेंगे।

सबको एक दिन मरना है, जो आया है वह जाएगा। कुदरत का यह कानून (नियम) अटल है। जब धुर से काग़ज़ फटता है, तो जाना ही पड़ता है। हम लाख भूलते फिरें मौत को, उसकी हक़ीक़त से इंकार करते फिरें कि हमें मौत नहीं आएगी, पर मौत से हम बच नहीं सकते। हमारी हालत उस कबूतर की सी होगी, जो बिल्ली को देखकर आँखें बंद कर लेता है कि अब मुझे बिल्ली कुछ न कहेगी, मगर थोड़ी ही देर में वह बिल्ली के मुँह में होता है। उस वक़्त उसे कौन छुड़ा सकता है? पहले होश करता, तो कोई बचने का उपाय भी हो सकता था। इसलिए जागो, होश में आओ, ताकि मनुष्य जीवन का जो सुनहरी मौक़ा मिला है, वह हाथ से न निकल पाए।

रूहानियत (आत्म-तत्त्व)

शायद यह नामुनासिब (असंगत) न होगा अगर 'रूहानियत' या 'आत्म–तत्त्व' की यहाँ तारीफ़ (व्याख्या) कर दी जाए कि 'रूहानियत' क्या चीज़ है। रूहानियत के बारे में लोगों में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। लोग प्रायः धर्म–ग्रंथों पर अंधविश्वास करने को, चमत्कार दिखाने को या फिर मानसिक अथवा योग शक्ति के प्रदर्शन को ही रूहानियत समझते हैं। असल में रूहानियत अन्तर का अनुभव है। जहाँ दुनिया के सारे दर्शन (फ़िलॉसफ़ी) और योग साधन ख़त्म हो जाते हैं, वहाँ से इसकी (रूहानियत की) क, ख, ग शुरू होती है, यह आत्मा का अनुभव है। जब यह (मनुष्य) कहता है, "मैं जिस्म (शरीर) हूँ," तो यह भावना बुद्धि पर आधारित है और अज्ञान है। जब वह यह कहता है, "मैं शरीर नहीं, मैं जागृत आत्मा हूँ," तो यह बात वह पढ़े–पढ़ाये या सुने–सुनाये ज्ञान–ध्यान के आधार पर कहता है। पर जब वह जड़ से चेतन को अलहदा करके अर्थात अपनी

आत्मा को पिंड से ऊपर लाकर, तन–मन से अलग करके, अपने निज–स्वरूप को देखता है और परमात्मा का अनुभव करता है, तो यह रूहानियत है।

रूहानियत की क, ख, ग पिंड से ऊपर आकर शुरू होती है। अपने आप कोई पिंड से ऊपर नहीं आ सकता, जब तक कि कोई अनुभवी महापुरुष, संत–सत्गुरु अपनी दयामेहर से उसे पिंड से ऊपर न लाए। अगर कोई यह समझे कि वह बग़ैर किसी की मदद के, अपने आप पिंड से ऊपर आ सकता है, तो वह अपने आपको धोखा देता है। यह अनुभव सत्गुरु ही दे सकते हैं, उनकी शरण में जाए बिना कोई प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। संत–सत्गुरु परमार्थाभिलाषियों को बाँटने के लिए रूहानियत की यही दात लेकर आते हैं। यह चीज़ दुकानों पर नहीं बिकती, न ही यह सीखी जा सकती है, यह तो छोह (छूत) की तरह पकड़ी जाती है। जैसे छूत की बीमारी वाले के पास बैठने से बीमारी लग जाती है, ऐसे ही जो रूहानियत के नशे से सराबोर हैं, उनके पास बैठने से हम भी उस रंग में रंगे जाते हैं। जिस तरह कुदरत की दातें (देन) पानी, हवा, रोशनी वगैरह सबको मुफ़्त मिलती हैं, ऐसे ही कुदरत की यह दात (परमार्थ की दात) भी सत्स्वरूप महापुरुष मुफ़्त लुटाते हैं। ग्रंथों–पोथियों में इस चीज़ का ख़ाली ज़िक्र है, यह चीज़ किताबों में नहीं है, सारे धर्मग्रंथ इस बात को मानते हैं। इन किताबों में पूर्ण पुरुषों के निजानुभवों का वर्णन है, अपने आप को जानने और प्रभु को पहचानने के रास्ते में क्या तजुरबे उन्हें हुए, कौन–सी चीज़ इस रास्ते में मददगार सिद्ध हुई और कौन–सी रुकावट साबित हुई, यह सारा बयान है किताबों में। ये ग्रंथ–पोथियाँ अनमोल भंडार हैं, परमार्थ के इतिहास का, इनमें पिछले महापुरुषों के संदेश हैं, हमारे पथ–प्रदर्शन के लिए, जिनसे मौजूदा सत्स्वरूप महापुरुष की तालीम का समर्थन होता है और उस पर हमारा विश्वास दृढ़ होता है। आलिमों (विद्वानों, वाचक–ज्ञानियों) ने धर्मग्रंथों की टीकायें और लम्बी–चौड़ी तफ़सीरें (व्याख्याएँ) करके मज़मून को सुलझाने की बजाय, और उलझा के रख दिया है। भिन्न–भिन्न अनुवाद, टीकायें और व्याख्यायें हैं, सब एक दूसरे से अलग हैं। पढ़ने वाला बात समझने की बजाय और

उलझ जाता है। अहम् भाव से प्रेरित होकर मनुष्य ने सैकड़ों अलग–अलग धार्मिक मंडल खड़े कर दिए हैं, जिनका उद्देश्य प्रेम की जगह तंग–नज़री और ता'स्सुब फैलाना और आपस में मिलाने की बजाय लोगों को तोड़ना, उनके टुकड़े करना है। इस कशमकश और दो–चित्ती की अवस्था में, लोग कुदरती तौर पर वैर–विरोध और लड़ाई–झगड़े की बात ही सोचेंगे।

संतों की तालीम को समझने के लिए हम सत्संग में जाते हैं। हमारे बहुत से शक़–शकूक (संशय) वहीं, सत्संग में दूर हो जाते हैं, बाक़ी उनसे सवाल–जवाब के ज़रिये साफ़ हो जाते हैं। वहाँ हर सवाल पर पूरी तवज्जोह दी जाती है और संतोषजनक उत्तर मिलता है, हरेक सवाल का। जैसे कर्तव्य–निष्ठ डॉक्टर हर रोगी को, चाहे वह ग़रीब हो या अमीर, एक–सी तवज्जोह से देखता है, ऐसे ही पूर्ण पुरुष की दृष्टि में सब एक हैं। वह (पूर्ण पुरुष) अंतर्यामी होता है। जीव उसके पास जाता है तो उसकी अन्तर की अवस्था को वह इस तरह साफ़–साफ़ देख लेता है, जैसे शीशे के मर्तबान में नज़र आ जाता है कि उसमें अचार पड़ा है या मुरब्बा। लेकिन वह किसी का परदा नहीं उघाड़ता (भेद नहीं खोलता किसी का)। उसके पास बैठो, तुम उसकी भाषा न भी समझो, तो भी उस मंडल के रंग से रंगे जाओगे, जैसे अत्तार (इत्र बेचने वाला, गंधी) की दुकान पर दो घड़ी बैठो, वहाँ से कुछ भी न लो, तो भी तुम्हारे कपड़े ख़ुशबू से भर जाते हैं। उसकी (पूर्ण पुरुष की) आँखें प्रभु–प्रेम के रस और रंग का छलकता हुआ पैमाना होती हैं।

सुभर भरे प्रेम रस रंगि।। उपजै चाउ साध कै संगि।।

– *आदि ग्रंथ* (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.289)

उसकी दयामेहर भरी दृष्टि से आत्म रंग का नशा मिलता है। आँख–आँख को यह दौलत दे जाती है। सच्चे परमार्थाभिलाषी उस नज़र को तरसते हैं, जिसके बारे में कहा है :

यक निगाहे जाँ फ़िज़ायश बस बवद दरकारे मा।

– भाई नंदलाल 'गोया'

अर्थ : मुझे जान को उभारने वाली तेरी एक नज़र काफ़ी है, मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

सच्चे महात्मा की पहचान

महात्मा की ज़ाहिरी शक्ल–सूरत पर न जाओ। यह न देखो कि वह किस कुल से है, किस देश का रहने वाला है, उसकी बोल–चाल, खान–पान, पहनावा क्या है, समाज में उसकी क्या हैसियत है, कितनी किताबों का वह लेखक है या लोग उसके बारे में क्या कहते हैं। इन बातों से महात्मा को न परखो। पहले अंतर्मुख होकर उस अनुभव को पाओ, जो वह देता है। तभी वह आँख बनेगी, जिससे तुम उसे पहचान सकोगे। श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज फ़रमाया करते थे, "मुझे भाई कह लो, दोस्त कह लो, टीचर समझ लो, पिता समान समझ लो। मेरे कहने के अनुसार अपनी आत्मा को पिंड से ऊपर लाकर अन्तर में चढ़ाई करो। जब रूहानी (दिव्य) मंडलों पर गुरु की शान को देखो, तो जो चाहे कह लेना।" संत–महात्मा की सबसे बड़ी पहचान यह है कि वह सामने बिठाकर, पिंड से ऊपर आने का ज़ाती तजुरबा (व्यक्तिगत अनुभव) देने की सामर्थ्य रखता है। पहाड़ की चोटी पर जो खड़ा है, वह देख सकता है कि कहाँ आग लगी है, कहाँ धुआँ उठ रहा है। वह (पूर्ण पुरुष) हमारी तरह इंसानी जिस्म रखता है, हमारी तरह चलता–फिरता और दुनिया के सारे काम–काज करता नज़र आता है। लेकिन वह हमारी तरह तन–मन के पिंजरे में क़ैद नहीं, वह समर्थ पुरुष है। जिसने जीते–जी अपनी आत्मा को तन–मन से ऊपर लाकर अपने आपको जान लिया और परमात्मा को पहचान लिया और उस ऊँची सतह से जो हमारी बेबसी और लाचारी को, हमारी मुसीबतों और परेशानियों को देखता है, जिसे मनुष्य जाति की सारी समस्याओं का ज्ञान है और उनका इलाज भी उसके पास है, जो बाहर दुनिया में जंगलों, पहाड़ों, बियाबानों में, सुख–दुःख में, मुसीबत, परेशानियों में हमारे अंग–संग सहाई हो और अन्तर दिव्य मंडलों में भी आगे होकर रास्ता दिखाये, जो ज़िंदगी में भी

साथ रहे और मर कर भी साथ न छोड़े, ऐसा जिंदा सत्स्वरूप महापुरुष ही गुरु–पद का अधिकारी है। मुबारिक हैं वे लोग, जो यह ख़बर सुनकर कि ऐसा महापुरुष हमारे दरमियान मौजूद है और हमसे दूर नहीं, खुशी से फूले नहीं समाते और उसका दर्शन पाने के लिए बेचैन हो जाते हैं।

रूहानियत या आत्म–विद्या बाक़ायदा एक साइन्स है, बल्कि दूसरी साइन्सों के मुकाबले में ज़्यादा आसान है। परमात्मा का पाना मुश्किल नहीं, इंसान का बनना मुश्किल है। कोई लम्बी–चौड़ी क़वायद (रस्म–रिवाज़) करने की ज़रूरत नहीं, सिर्फ़ ज़मीन की तैयारी चाहिए। परमार्थ के लिए ज़मीन की तैयारी करो : नेक–पाक सदाचारी जीवन, सबसे प्यार, किसी का बुरा चितवन न हो, किसी के लिए दिल में नफ़रत न हो, दीनता और नम्रता को धारण करो। आपका केवल इतना ही काम है, बाक़ी सब उसके (गुरु के) हाथ है। भारी संख्या में लोग किसी को मानते हों, तो यह इस बात का सबूत नहीं कि वहाँ रूहानियत है। कोई भी माहिर वक्ता या कथाकार जब चाहे, जहाँ चाहे, लोगों की भीड़ इकट्ठी कर सकता है, चाहे उसके भाषण में कोई सार न हो। रूहानियत (आत्म–विद्या) किसी घराने या ठिकाने से बँधी हुई नहीं, किसी वंश की बपौती नहीं। फूल जहाँ भी खिलेगा, भँवरे दूर–दूर से आकर वहाँ मँडराने लगेंगे, जहाँ शमा जलेगी, पर्वाने खुद चले आयेंगे। संत अपनी मान–बड़ाई नहीं चाहते, यद्यपि उनकी जितनी महिमा की जाए, कम है। वे जब भी बात करेंगे, यही कहेंगे, "यह सब मेरे गुरु की कृपा है। उन्हीं की बरकत (वरदान) है, मेरा इसमें कुछ नहीं। इसका सारा credit (श्रेय) मेरे गुरु को है।" फलदार दरख़्त की शाखाएँ हमेशा झुकी रहती हैं। नम्रता संतों का शृंगार है। दुनिया मान–बड़ाई के पीछे पागल हो रही है, संत इससे उपराम होते हैं।

महापुरुष हर ज़माने में दुनिया में आते रहे, मानव के कल्याण के लिए और आकर आत्म–विद्या की कुदरती साइन्स को ताज़ा करते रहे। पिछले संस्कारों के कारण, ज़माने की ऊँच–नीच को देखकर या ठोकरें खाकर, दुनिया से जिनका जी उचाट हो गया हो, केवल वे लोग उनकी

शरण में जाते हैं। जो लोग दुनिया के पदार्थों और इंद्रियों के भोगों रसों में लम्पट हो रहे हैं, दुनिया जिनका दीन–ईमान बनी पड़ी है, वे उनसे पीठ फेर लेते हैं। वे पेट के पुज़ारी, जिनके हृदय कठोर हो चुके हैं, संतों की ख़ाली मुख़ालिफत (विरोध) ही नहीं करते बल्कि उनकी जान के दुश्मन हो जाते हैं। ईशु मसीह, गुरु नानक, कबीर और दूसरे महापुरुषों के जीवन वृत्तांत पढ़ने से मालूम होगा कि कैसी–कैसी तकलीफ़ें उन्हें दी गईं। तो पूर्ण पुरुष जीवों के कल्याण के लिए हर ज़माने में आते रहे, अब भी हैं, आगे भी आते रहेंगे। यह ख़्याल ग़लत है कि रूहानियत (आत्म–विद्या) लोप हो चुकी है या किसी ख़ास हस्ती (महापुरुष) के बाद उसकी तालीम का सिलसिला बंद हो गया है और अब केवल ग्रंथ–पोथियाँ ही रह गई हैं, हमें रास्ता दिखाने के लिए। जो लोग ऐसा समझते हैं, वे भारी भूल में जा रहे हैं।

अब सवाल यह पैदा होता है कि सच्चे महात्मा की पहचान क्या है? सच और झूठ, असल और नक़ल का फ़र्क कैसे मालूम हो? इसके लिए अपने ज़ाती (निज) अनुभव के सिवाय कोई दूसरी कसौटी नहीं, झूठ और सच को, असल और नकल को परखने की। रामायण के ज़माने में राजा जनक को ज्ञान पाने की अभिलाषा हुई। उसने भारत के ऋषियों–मुनियों, योगी–योगीश्वरों की एक सभा बुलाई और ऐलान किया कि जो मुझे ज्ञान देगा, मैं उसे इतनी हज़ार गाय, जिनके कानों में सोने की मुद्रायें होंगी, दक्षिणा में दूँगा। उस सभा में याज्ञवल्क्य ऋषि अव्वल रहे, उन्होंने राजा जनक की सब शंकाओं का समाधान कर दिया। वे दक्षिणा लेकर जाने लगे, तो गार्गी (एक विद्वान महिला) ने पूछा, "जिस हक़ीक़त (आत्म–तत्त्व) का आपने ज़िक्र किया है, क्या आप उस हक़ीक़त को देखने वाले भी हो?" उस ज़माने में लोग सत्यवादी होते थे। याज्ञवल्क्य ऋषि ने साफ़ कह दिया, "नहीं गार्गी, मुझे उस हक़ीक़त का ज़ाती तजुरबा (व्यक्तिगत अनुभव) नहीं है। मेरा ज्ञान केवल theory (सिद्धांत) को बुद्धि–विचार द्वारा समझने तक ही सीमित है। मैंने समझा है, देखा नहीं।" थोड़े दिनों के बाद राजा जनक ने महसूस किया कि मेरी हालत

में तो कोई ख़ास फ़र्क नहीं पड़ा, ज्ञानी के जो लक्षण धर्मग्रंथों में बयान किए गए हैं, मेरी वह गति नहीं है। उसने दुबारा से ऋषियों, मुनियों, महात्माओं की सभा बुलाई और अब की बार यह शर्त रखी कि दक्षिणा का अधिकारी वह होगा जो मुझे इतनी देर में ज्ञान दे, जितनी देर में, घोड़े की एक रकाब से दूसरी रकाब में पाँव रखा जाता है। सारे भारतवर्ष के ऋषि, मुनि, ज्ञानी–ध्यानी सभा में आए हुए थे (उनके नाम भी दिए गए हैं इतिहास में), लेकिन किसी की हिम्मत न पड़ी कि गुरु के लिए जो आसन बनाया गया था, उस पर जा बैठे। केवल एक आदमी निकला– अष्टावक्र, जो उठकर आसन पर जा बैठा, उसके शरीर में आठ बल (वक्र) पड़ते थे। सभा में बैठे हुए सब लोग उसे देख कर हँसने लगे।

अष्टावक्र ने राजा से पूछा, "राजन्! तुम ज्ञान पाना चाहते हो?"

"हाँ महाराज!" राजा जनक ने कहा।

"तो फिर यह चमारों की सभा क्यों इकट्ठी कर रखी है, जिनकी नज़र मेरे चमड़े पर है, आत्मा पर नहीं?"

सारी सभा में सन्नाटा छा गया। अष्टावक्र ने, जो कि समर्थ पुरुष थे, राजा जनक को अनुभव दिया, उतनी देर में, जितनी देर में घोड़े की एक रकाब से दूसरी रकाब में पाँव रखा जाता है। ऋषि ने अपनी तवज्जोह (दया–दृष्टि) का उभार देकर राजा की रूह को पिंड से ऊपर लाकर अन्तर में हक़ीक़त से जोड़ दिया। जितनी देर मुनासिब समझा, उसे (रूह को) ऊपर रहने दिया, फिर नीचे लाकर पूछा, "क्यों राजन्! ज्ञान हो गया?" राजा ने कहा, "हाँ महाराज!" पाना यह है कि लेने वाला गवाही दे कि हाँ, मुझे कुछ मिला है। बात विचारने की यह है कि उस ज़माने में जब कहा जाता है कि हिंदुस्तान में रूहानियत (आत्म–विद्या) बहुत उन्नति पर थी, केवल एक व्यक्ति, अष्टावक्र ऐसा निकला, जो आत्मानुभव दे सका, तो आज इस भौतिकवाद के युग में सैकड़ों की संख्या में अनुभवी महापुरुष कहाँ से मिल जायेंगे? लेकिन हमें तलाश ज़ारी रखनी चाहिए, क्योंकि सच्चे महात्मा के बिना जीव का कल्याण नहीं। झूठे प्रचार पर, दूसरों के कहे–सुने पर न जाओ। अपनी आँखों से

देखो, अपने कानों से सुनो। यहाँ अंधविश्वास से काम नहीं चलेगा कि किए जाओ, मर के मिलेगा। यह सवाल, यह ज़िंदगी का मुअम्मा (पहेली) जीते–जी हमें हल करना है। दुनिया की मान–बड़ाई, धन–दौलत, ऐशो–इशरत (भोग–विलास) के सामानों में लम्पट न हो जाओ, ये सब यहीं रह जायेंगे। जाओ, किसी ऐसे अनुभवी महापुरुष की तलाश करो, जो जीते–जी मरने का, पिंड से ऊपर आने का अनुभव देकर तुम्हें मौत के भय से आज़ाद कर दे। जब ऐसी हस्तियाँ आती हैं तो वे अपनी शरण में आने वाले हज़ारों–लाखों इंसानों को ज़िंदगी का दान दे सकती हैं। वे ज्योति–पुत्र होते हैं और पूरी इंसानियत को प्रभु की ज्योति दे जाते हैं।

अंधविश्वास परमार्थ के रास्ते में बड़ी भारी रुकावट है, जिसे दूर करना है। अंधविश्वास किसे कहते हैं? पूरी छान–बीन किए बिना, ख़ाली पढ़े–पढ़ाये और सुने–सुनाये रास्ते पर चल पड़ना, यह देखे बिना कि उस रास्ते पर चल कर हम कहाँ पहुँचेंगे, यह अंधविश्वास है। अगर हम किसी साधना में लगे रहें और लक्ष्य को भूल जायें जिसे पाने के लिए हम साधना कर रहे हैं, हम यह न देखें कि हम लक्ष्य की ओर कहाँ तक आगे बढ़े हैं, तो यह भी अंधविश्वास ही कहलायेगा। पूर्ण पुरुष के पास जाओ, तो सब तरफ़ से हट–हटाकर, एकाग्रचित्त होकर सुनो वह क्या कहता है। वह समझायेगा, कैसे तुम पिंड से ऊपर आकर आत्मानुभव को पा सकते हो। मज़मून को स्पष्ट करने के लिए वह पिछले महापुरुषों की वाणियों और ग्रंथों–पोथियों के प्रमाण भी देगा। जब बुद्धि–विचार करके बात समझ आ जाए और विश्वास हो जाए, तो तजुरबे के तौर पर उसके कहे अनुसार कर के देखो, अपनी अक़्ल का दख़ल न दो, जो वह कहे, उस पर अमल करो। यह पहला क़दम है, हक़ीक़त को पाने का। वह (अनुभवी महापुरुष) सामने बिठाकर, पिंड से ऊपर आने का व्यक्तिगत अनुभव तुम्हें देगा, थोड़ा ही सही, रुपये में दो आना सही, अनुभव पाकर फिर शक़ की गुंजाइश कहाँ रही? फिर रोज़–रोज़ अभ्यास करके उस तजुरबे को बढ़ाओ, वह दिनों–दिन बढ़ेगा। आज यह हालत बनी पड़ी है कि हम सारी उम्र प्रवचन या कथा–ज्ञान सुनते हैं और विश्वास कर लेते

हैं कि सुनने मात्र से हमारा कल्याण हो गया, मोक्ष का रास्ता हमने पा लिया है। जब अंत समय आता है, रूह पिंड को छोड़ती है क्योंकि जीते–जी पिंड से ऊपर आना सीखा नहीं, मर के कहाँ जाना है, यह भी मालूम नहीं, तो उस वक़्त होश आती है, पछताता है :

कहु कबीर तब ही नरु जागै।। जम का डंडु मूंड महि लागै।।

– *आदि ग्रंथ* (गोंड कबीर, पृ.870)

पर अब पछताये क्या होता है! यहाँ दुनिया की अदालत से घर ख़ाली करने का आदेश जारी हो तो कोई छूट या रियायत हो सकती है पर धुर से कागज़ फट जाए, तो जाना ही पड़ता है। सारी ज़िंदगी जिस्म का, इंद्रियों का रूप बना रहा। मौत के समय पिंड को छोड़ते वक़्त मुश्किल बनती है, घिड़कता (छटपटाता) है, कभी टाँगें, कभी बाजू मारता है, उस वक़्त कोई मदद नहीं कर सकता। यह घिड़कता मर जाता है, दोस्त–मित्र, हक़ीम–डॉक्टर, भाई–बंधु–रिश्तेदार, पंडित–पुरोहित खड़े देखते रह जाते हैं।

ऐसे वक़्त में परा–विद्या (जीते–जी मरने का विज्ञान) ही आड़े आ सकती है। जीते–जी पिंड से ऊपर आने का भेद जिसने जान लिया, मौत उसके लिए कोई हौवा नहीं है। जिस्म छोड़ते हुए उसे कोई तकलीफ़ नहीं होती। पिंड से ऊपर आ गए, आगे गुरु खड़ा है, दिव्य मंडलों में साथ ले जाने के लिए। उसे मौत की ऐसी ख़ुशी होती है जैसे शादी की होती है। जिस्म एक दीवार है, हमारे और उस प्रीतम, प्रभु–परमात्मा के बीच, वह टूट गई तो हमेशा के लिए उस प्रभु की गोद में हम चले गए। उसका रोज़ का आना–जाना है, अन्तर दिव्य मंडलों में, जिनके सामने बाहरी स्थूल दुनिया कोई हक़ीक़त नहीं रखती। मर के जहाँ जाना है, वह रास्ता उसने जीते–जी तय कर लिया है। वह ख़ुशी–ख़ुशी अपने घर जाता है। मेरे परम् पूज्य सत्गुरु श्री हुजूर बाबा सावनसिंह जी महाराज अपने शिष्यों को नाम की कमाई की ताक़ीद करते हुए फ़रमाया करते थे, "नाम और गुरु की समर्था देखनी हो, तो जाओ, किसी सत्संगी को मरते देखो, तुम्हें विश्वास हो जाएगा।"

संतों ने हमेशा जीवन–मुक्त को माना है। वे यह नहीं कहते, न इस बात पर विश्वास करते हैं कि मर कर मुक्ति मिलेगी। हमारे हुज़ूर (बाबा सावन सिंह जी महाराज) फ़रमाया करते थे, "जो जीते–जी पंडित है, वह मर के भी पंडित ही रहेगा। जो जीते–जी पढ़ा नहीं, उसने मर के पंडित थोड़े बन जाना है?" यह (परा–विद्या, सुरत–शब्द योग) सबसे आसान और सरल विज्ञान है, इसलिए संतों के मार्ग को सहज मार्ग कहते हैं। शिष्य को ख़ाली दीक्षा लेकर संतोष नहीं कर लेना चाहिए, जब तक साथ में अनुभव न मिले। जो साधन, युक्ति वह (गुरु) दे, उसकी कमाई करो, बाक़ायदा वक़्त दो अभ्यास के लिए और अपनी उन्नति की रिपोर्ट बाक़ायदगी के साथ उन्हें (गुरु को) भेजते रहो। ख़ुद मिलकर या ख़त लिखकर उनसे बराबर मशवरा और हिदायत लेते रहो, यह कभी मत सोचो कि इससे उनको असुविधा होगी। गुरु अंतर्यामी होते हैं और शिष्य की अन्तर की हालत को जानते हैं और अपनी तवज्जोह और दयामेहर के उभार से उसकी अधिकतर कठिनाइयों को दूर करने में समर्थ हैं, लेकिन वे चाहते हैं कि शिष्य स्वयं मिलकर या लिखकर उन्हें बताये कि साधन–अभ्यास में उसने कहाँ तक तरक़्क़ी की है, उसमें उसे क्या मुश्किल या रुकावट पेश आई है।

'सुरत–शब्द योग' या 'परा–विद्या' हमेशा से चली आ रही है। यह पुरातन से पुरातन और सनातन से सनातन, एक कुदरती साइन्स है, एक सहज मार्ग है। बच्चा, बूढ़ा, औरत, मर्द हर कोई आसानी से इसका अभ्यास और कमाई कर सकता है। हठ–योग आदि दूसरे साधनों की तरह इसमें स्वाँस संयम और कठिन आसन नहीं करने पड़ते, जिनमें मेहनत तो बहुत लगती है, लेकिन प्राप्ति कुछ नहीं, सिवाय छोटी–मोटी सिद्धियों के। फिर उन साधनों के लिए हृष्ट–पुष्ट शरीर और ख़ास किस्म की ख़ुराक़ चाहिए। ये क्रियायें और साधन न केवल आजकल के ज़माने के अनुकूल नहीं, बल्कि ख़तरनाक सिद्ध हो सकते हैं, इसलिए पूर्ण पुरुष इन्हें अच्छा नहीं समझते।

परा-विद्या

हमारे इस स्थूल शरीर में दो धारायें काम करती हैं जो इसे चलाती हैं और सजीव रखती हैं : एक प्राणों की धारा, दूसरी सुरत की धारा। प्राणों की धारा या 'Motor-currents' स्वाँसों को control (नियंत्रित) करती है, इसके कारण ख़ून जिस्म में दौरा करता है, ख़ुराक हज़म होती है, नाख़ून और बाल बढ़ते हैं, इत्यादि। दूसरी, सुरत की धारा या 'Sensory-currents' या चेतनता की धारा, जो सारे शरीर में व्याप्त है, लेकिन उसका ठिकाना या केन्द्र दो भ्रू–मध्य, आँखों के पीछे है। यहीं मन का ठिकाना है। इस सुरत की धारा को, जो सारे शरीर में रोम–रोम में फैली हुई है, एकत्र करके दो भ्रू–मध्य आँखों के पीछे इसके मरकज़ या केन्द्र पर लाना है। प्राण अपना काम कर रहे हैं, स्वाँस चल रहा है, हमें कोई ख़बर नहीं है, गिज़ा (ख़ुराक) हज़म हो रही है, ये सारे काम अपने आप हो रहे हैं, हमें कोई ख़बर नहीं है। जब प्राणों का ख़्याल किए बग़ैर दुनिया के सारे काम अपने आप हो रहे हैं, तो परमार्थ (आत्म–अनुभव और प्रभु–अनुभव) की प्राप्ति का काम प्राणों के बिना क्यों नहीं हो सकता? इसलिए संतों ने प्राणों के साधन को बीच में से निकाल दिया है और आत्म–विद्या के मार्ग को short-cut (सुगम और संक्षिप्त) कर दिया है। 'सुरत–शब्द योग' में स्वाँस संयम और हठ–योग वगैरह के कठिन और अप्राकृतिक साधन नहीं करने पड़ते। यह आसान से आसान, कुदरती साधन है, जिसका अभ्यास मर्द, औरत, बच्चा, बूढ़ा बग़ैर किसी कठिनाई के कर सकता है।

दीक्षा या नामदान

यहाँ दीक्षा या नामदान की चर्चा असंगत न होगी, जो हर परमार्थाभिलाषी के लिए ज़रूरी है। मन हमेशा बाहर इंद्रियों के भोगों–रसों में फँसाये रखता है, वह कभी अन्तर में हमें जाने नहीं देता। मन बहिर्मुखी लज़्ज़तों (इंद्रियों के भोगों–रसों) का आशिक़ (रसिया) है। इसमें हर वक़्त वेग उठते रहते हैं, कभी कोई, कभी कोई, जिनको रोकना मुश्किल है। मन

को स्थिर और एकाग्र करने का एक ही उपाय है, अन्तर में 'नाम' या 'शब्द–ध्वनि' से सुरत को जोड़ना। आप किसी भी समाज धर्म या सम्प्रदाय से संबंध रखते हों, आप इस (सुरत–शब्द योग) की कमाई कर सकते हैं। धर्म या समाज को बदलने की ज़रूरत नहीं। वहीं रहो, जिस समाज में तुम हो। अपने–अपने समाजों में रहते हुए अपने रस्म–रिवाज़ रखते हुए, यह काम आप कर सकते हो। इसके लिए कोई लम्बे–चौड़े क़ायदे क़ानून मुकर्रर नहीं, कोई रस्म–रिवाज़ कर्मकांड या बाहरी आडम्बर नहीं करना है। कोई पैसे–धेले का ख़र्च नहीं, फूल तक चढ़ाने की ज़रूरत नहीं। शिष्य को केवल यह करना है कि बाहर से हटकर अंतर्मुख हो, जिस्म की laboratory (प्रयोगशाला) में प्रवेश करे, पिंड को खोजे। जहाँ तक theory (सिद्धांत) का संबंध है, नीचे लिखी बातों को समझने की ज़रूरत है, जिनमें सत्संग में कही जाने वाली बातों का निचोड़ थोड़े शब्दों में पेश किया गया है।

1. गुरु देह नहीं– पहली बात समझने की यह है कि गुरु देह नहीं। वह हमारी तरह शरीर रखता है, पर वह परम शक्ति है प्रभु की, जो मानव के चोले में काम करती है, जीवों के कल्याण के लिए। देह करके शिष्य गुरु को, यहाँ भी और आगे दिव्य मंडलों में भी पहचान सकता है।

2. गुरु 'शब्द' है– घट–घट रमी हुई करन–कारण प्रभु सत्ता, जो मानव देह में काम कर रही है, वही गुरु है। उसे 'नाम' कहो, 'Word' कहो, नाद कहो, 'Divine Link' (दिव्य–सूत्र) कहो– मतलब एक ही है– वह डोर है, जिसे पकड़कर हम निजधाम, सत्लोक, सत्नाम पहुँच सकते हैं।

3. जो लोग इस ज़िंदगी से तंग आ चुके हैं और दुनिया के झगड़ों–झंझटों से दूर, हमेशा की शांति की खोज में हैं, ऐसी दुःखी आत्माओं को ढारस देने के लिए वह 'शब्द' सदेह हो जाता है। सेंट जॉन कहते हैं, "वह 'शब्द' सदेह हो गया और हम इंसानों के बीच आकर रहा।" शिष्य को अन्तर में 'शब्द' का ता'ल्लुक (परिचय) देने के बाद गुरु, जो सदेह–शब्द है, उसके साथ हो बैठता है और उसके अंग–संग रहता है, पथप्रदर्शक और सहाई बनकर और उस वक़्त तक साथ नहीं छोड़ता, जब तक वह

उसे धुरधाम न पहुँचा दे। यहाँ इस दुनिया में भी और मर कर आगे दिव्य मंडलों में भी, वह (गुरु) साथ नहीं छोड़ता। अन्तर में 'नाम' या 'शब्द' का ता'ल्लुक, जो गुरु नामदान के समय शिष्य को देता है, वह ज़िंदगी का दान या 'जीयादान' है, जिसके बारे में आता है :

जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए।।

– *आदि ग्रंथ* (सूही म.5, पृ.749)

शुरू में ऐसे लगता है, जैसे दूर से आवाज़ आ रही है। वह आवाज़ धीरे–धीरे तेज़ हो जाती है और ऐसा सुरीला राग सुनाई देता है, जो रूह को खींच लेता है और दुनिया के सारे राग–रंग उसके सामने फीके पड़ जाते हैं। यही वह चीज़ है, जिसे धर्मग्रंथों में 'Water of Life', 'आबे–हयात', 'अमृत' आदि नामों से बयान किया गया है।

4. जैसे बाहर की आँखों से हम दृश्य जगत को देखते हैं, ऐसे ही हम अंतरीय आँख भी रखते हैं। इस वक़्त हम केवल बाहर देखते हैं, हमारी अन्तर की आँख बंद है। कोई ज़िंदा सत्स्वरूप महात्मा दया करके सियाही के परदे को हटाकर हमारी (अन्तर की) आँख को खोल दे, तो हम अन्तर दिव्य मंडलों को देखने वाले हो जाते हैं। उस वक़्त जागृत अवस्था में, होश–हवास रखते हुए, आश्चर्यजनक अनुभव इंसान को होते हैं। अन्तर दिव्य मंडलों की यात्रा में क़दम–क़दम पर ख़तरों का सामना करना पड़ता है, इसलिए किसी समर्थ, सत्स्वरूप हस्ती के बिना अन्तर चढ़ाई करना बहुत ख़तरनाक है।

सुमिरन

सुमिरन का जो मंत्र शिष्य को दिया जाता है, वह एक ढाल या कवच है, हर किस्म के ख़तरों से बचने के लिए। अन्तर के दिव्य मंडलों में रसाई के लिए वह एक कुंजी भी है, जिससे अन्तर के पट खुलते जाते हैं। सुमिरन दुःख और मुसीबत का मुक़ाबला करने के लिए शरीर और मन को बल देता है, आत्मा को गुरु की ओर खेंचता है। सुमिरन से फैली हुई तवज्जोह (ध्यान) एकाग्र होती है और कई प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती

हैं। अधूरे गुरु का दिया हुआ सुमिरन ख़ाली लफ़्ज़ों का मज़मूआ (संग्रह) है। वही लफ़्ज़ जब समर्थ पुरुष देता है, तो वे बिजली की तरह charged (अभिसक्त) होते हैं, उनमें बड़ा भारी असर होता है।

दीक्षा या नामदान के समय सबसे पहले अंतरीय मार्ग के बारे में समझाया जाता है, जिस पर कि साधक को चलना है। दिव्य मंडलों का पूरा हाल खोला जाता है। इसके बाद शिष्य को पहले सुमिरन पर और उसके बाद भजन (नाद–श्रवण) पर बिठाया जाता है। समर्थ गुरु की दया–दृष्टि के प्रताप से साधक की अन्तर की आँख खुलती है और वह अन्तर दिव्य मंडलों में नूर–नज़ारे देखता है। भजन के समय अन्तर में 'शब्द' या 'नाम' का परिचय साधक को मिलता है, वह उस सुरीली ध्वनि को सुनता है, जो रूह या सुरत को खींच कर दिव्य मंडलों में ले जाती है। 'ज्योति' और 'श्रुति' मार्ग का यह व्यक्तिगत अनुभव, पहले ही दिन (थोड़ा मिले या बहुत, यह अपने–अपने संस्कारों पर है) हरेक साधक को मिलता है। आगे रोज़ अभ्यास करने से यह अनुभव दिनों–दिन खुलता चला जाता है। इसके साथ ही जीवन और आचरण के बारे में ज़रूरी हिदायतें जैसे नेक पाक सदाचारी जीवन और सादा रहन–सहन आदि शिष्य को दी जाती हैं। जीवन और आचरण में रोज़–रोज़ जो भूल–चूक और त्रुटियाँ होती हैं, उन्हें लिखने के लिए छपी हुई डायरियाँ भी दी जाती हैं, जिन्हें भरना ज़रूरी है। डायरी रखने से समय पर ग़लती पकड़ी जाती है और गुरु कृपा से उसका सुधार हो जाता है। दीक्षा की प्रक्रिया में दो–तीन घंटे लग जाते हैं।

चमत्कार

पूरा गुरु शिष्य को चमत्कार नहीं दिखाता। ख़ास हालात में एकाध बार ऐसा हो जाए तो हो जाए, वरना पूरे गुरु चमत्कार से दूर रहते हैं। जिन्हें हम चमत्कार कहते हैं, वे अप्राकृतिक घटनायें नहीं, बल्कि प्रकृति के नियमानुसार ही हैं, पर वे अभ्यासी के रास्ते में, जो कि परमात्मा से मिलना चाहता है, बहुत बड़ी रुकावट हैं। आम आदमी ऋद्धि–सिद्धि के

चक्कर में नहीं पड़ता क्योंकि इसमें तन–मन को साधना पड़ता है और आज का आराम पसंद आदमी ऐसी कठोर साधना करने के लिए तैयार नहीं। बरसों की कठिन तपस्या और साधना करके जो सिद्धि प्राप्त होती है, वह भले के लिए भी इस्तेमाल की जा सकती है, बुरे के लिए भी। ज़्यादातर दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए ही ये ताक़तें काम में लाई जाती हैं, इसलिए सच्चे रूहानी पुरुष ऋद्धियों–सिद्धियों को अच्छा नहीं समझते। समर्थ सत्गुरु हर प्रकार की ताक़तें रखते हैं, पर उनका मिशन, जिसके लिए वे संसार में आते हैं, बहुत ऊँचा है। ऐसे महापुरुषों का नामलेवा, जिसकी अन्तर की आँख या निरत गुरु कृपा से खुल चुकी है, क़दम–क़दम पर सैकड़ों चमत्कार देखता है। चमत्कार देखे बिना किसी संत–महात्मा पर विश्वास न करना तो ऐसे है, जैसे किसी करोड़पति को करोड़पति न मानना, जब तक कि वह अपनी दौलत हमें लाकर न दिखाए। उसने अपना रुपया बैंक में रख छोड़ा है और जब जैसे चाहेगा, उसे ख़र्च करेगा, अपनी दौलत का ढिंढोरा पीटने की उसे क्या ज़रूरत है? हज़ारों आदमी जादूगर के करतब देखते हैं। कितने हैं, जो जादूगर का खेल देखकर जादू के करतब सीखने के इच्छुक होंगे? जो चमत्कार देखने–दिखाने के चक्कर में हैं, वे सच्चे परमार्थाभिलाषी नहीं हैं।

अनुसंधान

आज दुनिया पुकार रही है, अमन और शांति के लिए, लड़ाई–झगड़ों से आज़ादी के लिए, ऐसे वातावरण के लिए, जिसमें इंसान–इंसान, भाई–भाई की तरह आपस में मिल बैठें और एक दूसरे को जानें और समझें। यह काम अनुभवी महापुरुषों का है। वह (संत) परमात्मा का वरदान है धरती पर, उनकी दयामेहर से ही मानव सभ्यता का पुनर्निर्माण हो सकता है। वे (संत) योग या विद्या सिखाते हैं, जड़ से चेतन (आत्मा) को अलहदा करके अपने आप को जानने की और उस अनुभव को पाकर इंसान का दृष्टिकोण बदल जाता है। वह देखता है इंसान–इंसान सब एक हैं, सब आत्मा देहधारी हैं और आत्मा उस परम–आत्मा की अंश है, जो कि सबका पिता है।

जो प्रभु का पुजारी होने का दावा करता है, जिसे कि वह देख नहीं रहा और अपने भाई इंसानों से प्रेम नहीं करता, जिन्हें कि वह देख रहा है, उसके लिए कोई उम्मीद नहीं। अपने साथी इंसानों से प्यार करना, उनके प्रति भ्रातृत्व और आदर का भाव रखना, परमात्मा से प्यार करना है। इसी प्रकार, देहधारी गुरु से प्यार करना, जो परमात्मा से हमें मिलाता है, परमात्मा से प्यार करना है। यह बुतपरस्ती या मर्दुमपरस्ती (मानव–पूजा) नहीं, परमात्मा की पूजा है। शरीर मात्र साधन है, उद्देश्य रूहानियत है। अनुभवी महापुरुष के मंडल में प्रेम और शांति की, आनंद और मस्ती की लहरें चलती हैं, जो उस मंडल में जाने वालों को उसी रंग में रंग देती हैं। उसके हाथों से या उसके आदेशानुसार लिखी हुई चिट्ठियों में भी वह प्रभाव होता है, जो अंतरात्मा पर असर डालता है। प्रभु–मिलन की शुरूआत गुरु–मिलन से होती है। गुरु मिले तभी प्रभु–प्राप्ति की आशा हो सकती है, अन्यथा नहीं। श्री हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज ऐसे ही अनुभवी महापुरुष थे। चिरकाल तक उनकी शीतल छाया शिष्यों के सिर पर रही और अब भी, जब कि वे जिस्म करके हमारे दरमियान नहीं रहे, वे अपने प्यारे बच्चों के अंग–संग सहाई हैं, उन लोगों के भी, जिन्होंने जीवन में एक बार भी प्यार श्रद्धा से उनके दर्शन किए हैं। प्यार में कोई क़ानून नहीं चलता, चुनांचे वे अपने बच्चों की ख़ातिर निचले दिव्य मंडलों पर भी नूरी स्वरूप में प्रकट होते हैं। ऐसी एक दो नहीं, सैकड़ों मिसालें रोज़ देखने में आ रही हैं, जिन्हें अज्ञानी वहम या भ्रम ही कहेंगे। हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि जब एक बल्ब फ़्यूज़ हो जाता है, तो उसकी जगह दूसरा लगा दिया जाता है। जो कोई भी वक़्त के संत–सत्गुरु के पास आता है, वह व्यक्तिगत अनुभव पा जाता है। जो कोई भी इस मनुष्य चोले के सुनहरी अवसर का फ़ायदा उठाना चाहता है, उसे सिर्फ़ एक संत–सत्गुरु के पास जाने की ज़रूरत है और उसकी ख़्वाहिशात पूरी हो जाएँगी, उसका दिल ख़ुशियों से भर जाएगा और उसके बोझिल कंधों पर से दु:ख और चिंताओं का भार हट जाएगा।

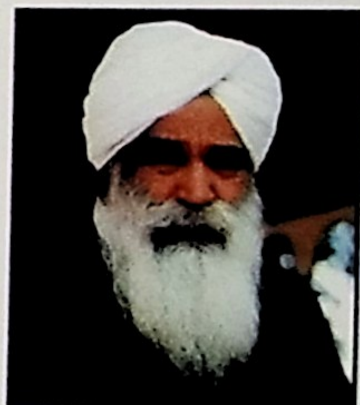


हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज : (1858-1948)



आप संत-मत परम्परा के पहले महापुरुष थे, जिन्होंने आत्म-ज्ञान की दौलत को दोनों हाथों से लुटाया। आपसे पहले 'सुरत-शब्द योग' या 'आत्म-ज्ञान' सिर्फ़ चंद लोगों तक सीमित था। आपने सवा लाख से अधिक जिज्ञासुओं को सुरत-शब्द योग की विधिवत् दीक्षा दी, जिसमें कई विदेशी भाई-बहन भी शामिल थे।

परम संत कृपाल सिंह जी महाराज : (1894-1974)



आपने सब धर्मों का एक सांझा मंच (Common Platform) बनाकर समस्त धर्माधिकारियों और अनुयाइयों को एक जगह बिठाने का महान कार्य किया। इसके चार ऐतिहासिक सम्मेलनों की भी आपने अध्यक्षता की। आपने तीन विश्व-यात्राएँ करके एवं रूहानियत के हर पहलू पर पुस्तकें लिखकर, दुनिया के कोने-कोने में जागृति का संदेश फैलाया। 1974 में प्रथम मानव एकता सम्मेलन में आपने खुले आम घोषणा की- ''मैं सतयुग की नवप्रभात किरणें आसमान से उतरते देख रहा हूँ।''

दयाल पुरुष संत दर्शन सिंह जी महाराज : (1921-1989)



आपने अपने पंद्रह वर्ष के कार्यकाल में 'सावन कृपाल रुहानी मिशन' और 'Science of Spirituality' के 40 देशों में 550 केन्द्र स्थापित किए और 50 भाषाओं में आध्यात्मिक साहित्य का अनुवाद कराया। आप एक जाने-माने सूफ़ी कवि थे और अपने संग्रहों पर उर्दू अकादमी की ओर से आपको कई पुरस्कार मिले। आपने संत-मत को सकारात्मक अध्यात्म (Positive Mysticism) कहा। इसका अर्थ यह है कि इंसान अपनी ज़िम्मेदारियों को भली-भाँति निभाते हुए, अपने कुटुम्ब, समाज, देश और विश्व में अपना योगदान देते हुए, आत्मिक बुलन्दी को पा सकता है।

संत राजिन्दर सिंह जी महाराज : (जन्म 1946)



'सावन कृपाल रूहानी मिशन' के वर्तमान सत्गुरु, आप एक जाने-माने वैज्ञानिक और दूर-संचार प्रणाली के विशेषज्ञ हैं और विश्व भर में संत-मत की सरल तथा आधुनिक रूप में प्रस्तुति कर रहे हैं। संत कृपालसिंह जी महाराज ने अध्यात्म और विज्ञान के बीच संवाद का जो सिलसिला शुरू किया था और जिसे संत दर्शनसिंह जी महाराज ने आगे बढ़ाया था, उसी कार्य को आप द्रुत गति से आगे बढ़ा रहे हैं।

सावन कृपाल रूहानी मिशन

यह मिशन रूहानियत, शांति एवं मानव सेवा के प्रति समर्पित है। यह संस्था, जिसकी स्थापना सन् 1976 में दयाल पुरुष संत दर्शन सिंह जी महाराज (1921-1989) ने की थी, अब संत राजिन्दर सिंह जी महाराज के निरीक्षण में कार्य कर रही है। जो कार्य हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज (1858-1948) तथा संत कृपाल सिंह जी महाराज (1894-1974) ने प्रारम्भ किया था, उसको इन्होंने निरन्तर जारी रखा है।

इस संस्था का अंतर्राष्ट्रीय मुख्यालय, कृपाल आश्रम, विजय नगर, दिल्ली में स्थित है। संसार के पश्चिमी देशों का मुख्यालय, 'साइंस ऑफ स्पिरिचुएलिटी सेंटर', नेपरविले, इलिनोए, उत्तरी अमरीका में है। इस समय मिशन के 3100 से अधिक केन्द्र हैं, जो संसार के 55 देशों में फैले हैं। मिशन का साहित्य विश्व की 54 भाषाओं में उपलब्ध है, और अन्य भाषाओं में इसका अनुवाद हो रहा है।

रूहानी विज्ञान के पूर्ण गुरु ध्यान टिकाने का ऐसा सहज-सुलभ तरीका सिखाते हैं, जिसे किसी भी उम्र, देश या जाति का इंसान अपना सकता है। इस अभ्यास को 'सुरत-शब्द योग' या 'संत-मत' कहा जाता है। ध्यान-अभ्यास की कला सीखने के साथ-साथ, यहाँ जिज्ञासु यह भी सीखते हैं कि जीवन को कैसे सदाचारी बनाया जाए, ताकि वे बेहतर नागरिक बन सकें और संसार की मदद कर सकें।



सावन कृपाल पब्लिकेशन्स स्पिरिचुअल सोसायटी
'कृपाल-आश्रम', संत कृपाल सिंह मार्ग, विजय नगर, दिल्ली-110 009
दूरभाष : 011-27117100
E-mail : skpindia@sos.org ~ Website : www.sos.org
www.facebook.com/sos.global
www.facebook.com/santrajindersinghjimaharaj